वक्तव्य

परमात्मा की सृष्टि का सौन्दर्य बड़ा कुतूहल-जनक है। इधर पृथ्वी पर वन-पर्वत की सघन नीलिमा के साथ-साथ अगाध रत्नाकर का भी अनन्त विस्तार है, उधर नयनाभिराम नभोमण्डल असंख्य ज्योतिष्क पिण्डों से अलंकृत और जगमग है। विश्व ब्रह्माण्ड की इस विलक्षण शोभा का चिन्तनमात्र जहाँ साधारण मनुष्य के मस्तिष्क को चकित और मुग्ध-स्तब्ध कर देता है, वहाँ ज्योतिर्विज्ञानवेत्ता विद्वान् उस शोभा के रहस्य का उद्घाटन करके विस्मित मनुष्य के आनन्द की अभिवृद्धि कर देते हैं। इस बात का प्रमाण प्रस्तुत पुस्तक में मिलेगा।

सृष्टितत्त्वविद्-दार्शनिक साहित्यकारों के मतानुसार भूगोल और खगोल—दोनों ही परमात्मा के रचे हुए रमणीय महाकाव्य हैं। जो विज्ञानविचक्षण हैं, वे इन महाकाव्यों के तत्त्व-विश्लेषण के मर्मज्ञ हैं और जो साहित्यस्रष्टा हैं, वे इनके बाह्याभ्यन्तरसौन्दर्य के रसज्ञ हैं। इस पुस्तक में वैज्ञानिकता और साहित्यिकता का किञ्चित् मिश्रण होने से गहन विषय भी रोचक बन गया है।

परिषद् की ओर से प्रतिवर्ष विभिन्न विषयों पर विशेषज्ञ विद्वानों के भाषण कराये जाते हैं, जो फिर पुस्तक-रूप में प्रकाशित भी होते हैं। इस पुस्तक में डाक्टर गोरखप्रसाद के भाषणों का समावेश है। सन् १९५३ ई० में ३१ अगस्त से उनकी भाषणमाला का आरम्भ हुआ था। परिषद् के अनुरोध से उन्होंने पटना-सायन्स-कालेज के फिजिक्स लेक्चर-थिएटर में ये व्याख्यान दिये थे। इनको प्रकाशचित्रों के सहारे उन्होंने जैसा आकर्षक बना दिया था, इस पुस्तक को भी उन्होंने आवश्यक चित्रों से वैसा ही बना दिया है।

डाक्टर गोरख प्रसाद जी हिन्दी-संसार के यशस्वी विज्ञानशास्त्री लेखक हैं। उनके 'सौर परिवार' और 'फोटोग्राफी' नामक दोनों ग्रन्थ हिन्दी साहित्य-जगत् में बहुत पहले ही सम्मानित और पुरस्कृत हो चुके हैं। प्रयाग की विज्ञान-परिषद्-जैसी प्रतिष्ठित संस्था के संचालकों में वे अन्यतम हैं। काशी के हिन्दू-विश्वविद्यालय में वे भारत के विश्वविख्यात गणित-विज्ञानाचार्य डाक्टर गणेशप्रसाद के प्रिय शिष्यों में थे। लगभग तीस वर्षों से वे प्रयाग-विश्वविद्यालय में 'रीडर' हैं। उनकी विद्वत्ता और कीर्ति हिन्दी के लिए निस्सन्देह गौरव-वर्द्धक है। हिन्दी के वैज्ञानिक साहित्य की श्रीवृद्धि के लिए परमात्मा उन्हें चिरायु करें, परिषद् की यही शुभकामना है।

यह पुस्तक स्वयं लेखक ने ही अपनी देखरेख में छपवाई है। इसलिए इसकी प्रामाणिकता असंदिग्ध है। आशा है कि लेखक की ख्याति इस पुस्तक को भी प्राप्त होगी।

वसन्तोत्सवावकाश
सं० २०११ वि०

शिवपूजन सहाय
(परिषद्-मंत्री)

भूमिका

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् ने जब मुझे किसी वैज्ञानिक विषय पर पांच व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया तब मैंने सहर्ष स्वीकार किया। अपनी सौर-परिवार नामक पुस्तक प्रकाशित हो जाने के बाद मैं अनुभव कर रहा था कि ज्योतिष-संसार के अन्यान्य ज्ञातव्य विषयों पर भी गवेषणात्मक रीति से कुछ लिखा जाना चाहिए। यद्यपि व्याख्यानमाला में उन सब विषयों का समावेश नहीं है, तथापि हिन्दी में नवीन ज्योतिष-साहित्य के अभाव की कुछ पूर्ति इससे अवश्य होगी।

इस पुस्तक से नीहारिकाओं और विश्व-रचना के संबंध में आधुनिक खोजों तथा निर्णयों की झलक मिलेगी। मेरा उद्देश्य केवल यह नहीं रहा है कि उन खोजों और निर्णयों का अंतिम परिणाम बता दूं, प्रत्युत् मेरा लक्ष्य यह रहा है कि उन परिणामों पर ज्योतिषी कैसे पहुँचे हैं, यह भी पाठकों को बता दूं। आशा है, मैं इसमें कुछ सीमा तक सफल हो सका हूँ।

इस पुस्तक में कहीं भी उच्च गणित के चक्कर में पाठकों को नहीं फँसना पड़ेगा, कहीं भी उन्हें जटिल विवेचनों की उलझनों में नहीं अटकना पड़ेगा। मेरा अनुमान है कि यह पुस्तक ज्ञानवर्धक और साथ ही रोचक सिद्ध होगी।

इस पुस्तक में दिये गये वेधशालाओं के तीन चित्र मेरी पुस्तक 'सौर-परिवार' से लिये गये हैं। उनके ब्लाक हिन्दुस्तानी एकेडेमी (प्रयाग) से मिले हैं, इस कृपा के लिए मैं उक्त संस्था का आभारी हूँ।

बेली ऐवेन्यू,
प्रयाग
५ मार्च, १९५५

गोरखप्रसाद

विषय-सूची

पृष्ठ

चतुर्थ अध्याय—अगांग नीहारिकाएँ

पञ्चम अध्याय—उत्पत्ति

नीहारिकाएँ

प्रथम अध्याय

ज्योतिषियों के यंत्र

नीहारिकाएँ क्या हैं—स्वच्छ अँधेरी रात्रि में अनेक जगमगाते तारे दिखायी पडते हैं। अनादि काल से मनुष्य आश्चर्य करता रहा है कि वे क्या हैं। इतना तो प्राचीन काल के लोगो ने भी अनुमान कर लिया कि वे अत्यत तप्त और स्वय दीप्तिमान हैं। उन्होने यह भी देख लिया था कि आकाशीय पिडो में से चार-पाँच में एक विशेषता है, यह कि वे अन्य तारो के बीच चलते रहते हैं। उनको ग्रह कहा जाता है। कभी-कभी पूँछवाले तारे भी दिखायी पडते हैं। ग्रहो के समान ये भी तारों के बीच चलते रहते हैं। इसलिए ये भी वस्तुत तारे नही हैं। इनके अतिरिक्त आकाश में तारो से पटी हुई एक मेखला-सी दिखायी पडती है, जिसे लोग आकाश-गगा कहते हैं। इसे डहर, आकाश जनेऊ, आकाश नदी, मदाकिनी, स्वर्णदी, सुरदीर्घिका इत्यादि भी कहते हैं। अँग्रेज़ी में इसे मिल्की वे (Milky way) या गैलेक्सी (galaxy) कहते हैं। मिल्की वे का अर्थ है 'दूधिया मार्ग'। गैलेक्सी शब्द यूनानी धातु गैला से निकला है, जिसका अर्थ भी दूध है। तारो के हिसाब से आकाश-गगा स्थिर है। कोरी आँख से इसमें तारे पृथक-पृथक नही दिखायी पडते, परतु बडे दूरदर्शको से फोटोग्राफ लेने पर इसमें असख्य तारे दिखायी पडते हैं। दक्षिणी आकाश में दो वस्तुएँ और भी दिखायी पडती हैं, जो आकाश-गगा के टुकडे-जैसी जान पडती हैं। प्रसिद्ध पोर्चुगाली नाविक मैगिलन (लगभग १४८०-१५२१) के नाम पर ये पिंड मैगिलन-मेघ (Magellanic clouds, मैगिलन के बादल) कहलाते हैं। ये आकाशीय वस्तु पृथ्वी के दक्षिणी गोलार्ध से ही दिखायी पडते हैं। भारत से ये नही देखे जा सकते।

मैगिलन-मेघ की ही जाति के, परतु उनसे कही छोटे, दो पिंड और आकाश में दिखायी पडते हैं, एक तो देवयानी (ऐंड्रोमिडा) तारामडल में और दूसरा त्रिभुज (ट्रायगुलम) तारामडल में। ये दो, और दो मैगिलन-मेघ ये चारो निहारिकाएँ हैं। नीहारिकाएँ उन आकाशीय वस्तुओ को कहते हैं जो तारो की तरह ही चमकीले हैं। परतु बिंदु-सरीखे न होकर कुछ दूर तक विस्तृत हैं। नीहारिका को अँग्रेज़ी में नेब्युला (nebula) कहते हैं और दोनो शब्दो का अर्थ एक ही है, अर्थात कुहेसा, कुहरा। कोरी आँख से केवल पूर्वोक्त नीहारिकाएँ ही दिखायी पडती हैं, परतु दूरदर्शक की सहायता से लाखो नीहारिकाओ का पता चला है। अनुमान किया गया है कि माउट विलसन के १०० इच वाले दूरदर्शक से, जो कुछ ही वर्ष पहले तक ससार का सबसे बडा दूरदर्शक था, १० करोड से भी अधिक नीहारिकाओ का पता चल सकता है। वर्तमान सबसे बडा दूरदर्शक २०० इच व्यास का है, परतु अभी इससे पूरा काम नही लिया जा सका है। इससे आकाश का निरीक्षण करने पर सभवत कई अरब नीहारिकाओ का पता चलेगा। कुछ लोग नीहारिकाओ की सख्या को सभवत विशेष बडा न समझेंगे, क्योकि वे समझते हैं कि तारो की सँख्या असख्य है और यदि उनके बीच १० करोड नीहारिकाएँ भी विद्यमान हैं तो कौन बडी बात है। परतु स्थिति ऐसी नही है। स्वच्छ-से-स्वच्छ रात्रि में तीन हजार

से अधिक तारे नहीं दिखायी पड़ते। प्रथम दृष्टि में तारे असंख्य अवश्य जान पड़ते हैं, परन्तु यदि आप एक दूसरे के पास तीन तारे चुन लें और उनसे बने त्रिभुज के भीतर के सब तारों को गिनें तो आप को पता चलेगा कि क्रमबद्ध ढंग से काम करने पर तारों की गिनती सुगमता से की जा सकती है। वस्तुतः कोरी आँख से दिखायी पड़नेवाले सब तारों की सूची बन गयी है। गिनती में वे ६,००० से कुछ कम ही हैं। तारों को विविध मण्डलों (constellations) में बाँट दिया गया है और प्रत्येक तारे के लिए क्रमांक या नाम नियत कर दिया गया है। दूरदर्शक से अवश्य बहुत-ही अधिक तारे दिखायी पड़ते हैं, परन्तु नीहारिकाओं की संख्या का १० करोड़ होना ध्यान देने योग्य बात है।

आकाश में काली, अर्थात् प्रकाशहीन, नीहारिकाएँ भी हैं। प्रकाशयुक्त तारों और नीहारिकाओं को छिपा देने के कारण ही वे हमें प्रत्यक्ष होती हैं।

छोटे दूरदर्शकों में नीहारिकाएँ दूरस्थ पुच्छलतारों-सी जान पड़ती हैं, परन्तु वे उनसे विभिन्न इस बात में हैं कि पुच्छलतारे तारों के बीच चलते रहते हैं और नीहारिकाएँ निश्चल रहती हैं। नीहारिकाओं की प्रथम सूची फ्रांस के चार्ल्स मेसिये (Charles Messier) ने आज से कोई पौने दो सौ वर्ष पहले बनायी थी, परन्तु उसे नीहारिकाओं में रुचि नहीं थी। वह पुच्छल तारों की खोज में रहा करता था और नीहारिकाओं के कारण उसे बहुधा भ्रम हो जाया करता था। अवश्य ही, पुच्छल तारे अन्य तारों के सापेक्ष चलते हैं, परन्तु उनके चलने, न चलने, का पता कई दिन तक वेध करते रहने पर लगता है। नीहारिकाओं की सूची रहने से मेसिये तुरत बता सकता था कि दूरदर्शक में दिखायी पड़नेवाली वस्तु कोई नवीन पुच्छलतारा है या पुरानी
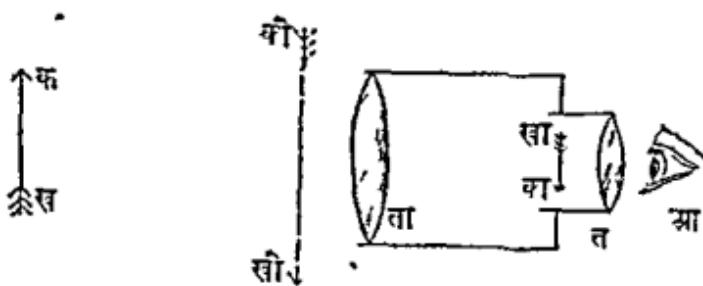
तालयुक्त दूरदर्शक

सरल तालयुक्त दूरदर्शक में एक प्रधान ताल ता रहता है और एक चक्षुताल त। दूरस्थ वस्तु क ख की मूर्ति का खा पर बनती है जो का पर आँख लगाने से बड़ी हो कर कौ खौ पर दिखायी देती है।

नीहारिका। मेसिये के पुच्छलतारा संबंधी आविष्कारों को लोग अब प्रायः भूल गये हैं, परन्तु उसका नाम उस नीहारिका-सूची के कारण अमर हो गया है जिसे स्वयं वह नगण्य समझता था। प्रमुख नीहारिकाएँ आज भी अपनी मेसिये क्रम-संख्या से इंगित की जाती हैं।

दूरदर्शक—नीहारिकाओ के विशेष अध्ययन के पहले यह समझ लेना अच्छा होगा कि दूरदर्शक क्या है, नीहारिकाओ की दूरी कैसे नापी जाती है, उनके वेग का पता कैसे चलता है और उनकी रासायनिक सरचना का ज्ञान हमें कैसे होता है।

इन दिनो दूरदर्शक द्वारा आँख से देखने के बदले साधारणत दूरदर्शक से फोटो लिया जाता है। दूरदर्शक दो प्रकार के होते है, एक तो तालयुक्त और दूसरा दर्पणयुक्त। तालयुक्त दूरदर्शक तो फोटोग्राफर के साधारण कैमरे के समान ही होता है, केवल नाप में बहुत बडा होता है। स्वात सुखाय साधारण फोटोग्राफ लेनेवालो के कैमरे का ताल (लेंज) डेढ़-दो इच या कम व्यास का होता है; परतु नीहारिकाओं की फोटोग्राफी के लिए प्रयुक्त ताल का व्यास ४० इच तक होता है। ससार के सबसे बडे तालयुक्त दूरदर्शक के ताल का व्यास ४० इच है। दूरदर्शक की लबाई भी साधारण कैमरो की लबाई से बहुत अधिक होती है, परतु प्लेट या फिल्म उसी अनुपात में बडा नही होता। कारण यह है कि बडा फोटोग्राफ लेने पर तीक्ष्णता केवल बीच में आती है, और इसलिए ज्योतिषी केवल बीच के भाग में ही अपना प्लेट लगाता है। इसीलिए ज्योतिषी का दूरदर्शक कैमरे के आकार का न होकर लबे तोप-जैसा होता है।
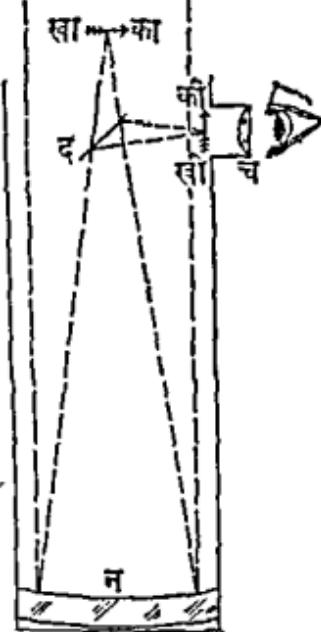
दर्पणयुक्त दूरदर्शक

दर्पणयुक्त दूरदर्शक में एक नतोदर दर्पण न रहता है जिससे दूरस्थ वस्तु क ख की मूर्ति काखा पर बन सकती है, परतु दर्पण द के कारण कीखी पर बनती है। फिर चक्षुताल द से यह प्रवर्धित रूप में दिखायी पड़ती है।

दर्पणयुक्त दूरदर्शक में ताल के बदले एक नतोदर दर्पण रहता है, यह वही काम करता है जो ताल करता है। ताल तारे से चली अपने ऊपर पडनेवाली सब प्रकाश-रश्मियो को मोड कर एक बिंदु पर एकत्र कर देता है और इस प्रकार तारे की मूर्ति या प्रतिबिंब बनाता है। नतोदर दर्पण भी तारे से आई प्रकाश-रश्मियो को एक बिंदु पर एकत्र करके मूर्ति बनाता है। इस मूर्ति को फोटोग्राफी के प्लेट पर पडने देने से फोटो खिच जाता है। बडे दूरदर्शक सब दर्पणयुक्त ही बनते है। कारण यह है कि चालीस इच से बडा ताल अपने ही भार से कुछ लच जाता है और इसलिए फोटोग्राफ विकृत हो जाता है। ताल को बहुत मोटा बना नही सकते, क्योकि उसके आर-पार प्रकाश जाना चाहिए। मोटाई बढने से उनकी पारदर्शकता कम हो जाती है। दूसरी ओर, दर्पणो में मोटाई की कोई सीमा नही है। आवश्यकतानुसार उन्हें मोटा बनाया जा सकता है। इतना ही नही, उनकी पीठ में रीढें डाली जा सकती है जो दर्पण को सुदृढ कर देती है। हाल में ही २०० इच व्यास का दर्पणयुक्त दूरदर्शक बना है। इसके दर्पण में रीढे लगी है।

तारों तथा अन्य आकाशीय पिंडों की फोटोग्राफी में एक विशेष कठिनाई पड़ती है, जो भूमि पर स्थित जड़ पदार्थों की फोटोग्राफी में नहीं पड़ती। वह यह है कि तारे सदा चलते रहते हैं। सूर्य अथवा चन्द्रमा की भाँति वे भी प्रतिदिन पूर्व में उदय होते हैं और पश्चिम में अस्त होते हैं। इस कठिनाई पर ज्योतिषी ने विजय अपने दूरदर्शक को घड़ी-चालित बना कर पायी है। जिस वेग से तारा आकाश में चलता रहता है, ठीक उसी वेग से दूरदर्शक भी घूमता रहता है। यंत्र इतना अच्छा बना रहता है कि तनिक भी थरथराहट नहीं उत्पन्न होती।

दूरस्थ वस्तु की दूरी नापना
जब क्षेत्रमापक को किसी अति दूरस्थ वस्तु की दूरी नापनी रहती है
तब वह दो स्थानों से अगम्य वस्तु का वेध करता है।

प्रधान दूरदर्शक के साथ एक दूसरा दूरदर्शक भी बँधा रहता है। ज्योतिषी उससे तारे को बराबर देखता रहता है। यदि तारे के हिसाब से दूरदर्शक लेशमात्र भी शीघ्र या मंद चलना आरंभ करता है तो बिजली का बटन दबा कर वह वेग को ठीक कर लेता है।
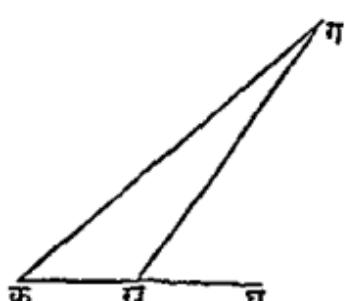
ग

क ख घ

दूरी नापने का सिद्धांत
यदि कोण क ख और दूरी क ख ज्ञात हो जायँ तो त्रिभुज कखग से दूरी क ग ज्ञात हो सकती है।

दूरी नापना—नीहारिकाओं की दूरियाँ अरब-खरब मील से भी अधिक हैं। ये दूरियाँ आश्चर्यजनक तो हैं ही, परन्तु इनका नापा जाना और भी आश्चर्यजनक है और फिर ये रीतियाँ ऐसे सरल सिद्धान्तों पर आश्रित हैं जिन्हें सभी समझ सकते हैं।

जब क्षेत्रमापक को किसी अति दूरस्थ वस्तु की दूरी नापनी रहती है, जिसके पास वह पहुँच नहीं सकता, तब वह दो सुविधाजनक विंदु चुन कर उनके बीच की दूरी को सूक्ष्मता से नाप लेता है। मान लो, ये विंदु क और ख हैं। मान लो, दूरस्थ वस्तु ग पर है। यदि क ख की दिशा में घ कोई विंदु है तो क्षेत्रमापक कोण

घ ख ग और कोण घ क ग को नापता है । क ख की लंबाई और पूर्वोक्त दोनों कोणों की नापें ज्ञात होने पर उसे त्रिभुज क ख ग की एक भुजा और दो कोण ज्ञात हो जाते हैं और इसलिए वह क ग की गणना सुगमता से कर लेता है । इसमें उच्च गणित की आवश्यकता नहीं है, हाई स्कूल तक ज्यामिति पढ़ा कोई भी विद्यार्थी त्रिभुज क ख ग को पैमाने के अनुसार बना कर क ग का मान ज्ञात कर सकता है ।

इसी रीति से ज्योतिषी मंगल अथवा अन्य किसी निकटस्थ अवांतर ग्रह* की दूरी नापता है । कठिनाई केवल इस बात में पड़ती है कि कोण घ ख ग और घ क ग प्राय एक ही निकलते हैं और इसलिए रेखाएँ क ग और ख ग प्राय समानांतर रहती हैं । कोणों के नापने में तनिक भी त्रुटि होने से दूरी क ग में बहुत-सा अन्तर पड़ जाता है । इसलिए दूरी अनिश्चित हो जाती है । इस का बहुत-कुछ प्रतिकार क ख को खूब लंबा लेने से हो जाता है । परंतु क ख की लंबाई की भी एक सीमा है । रेखा क ख पृथ्वी के व्यास से बड़ी तो हो ही नहीं सकती । इसे प्राय पृथ्वी के व्यास के बराबर लेकर और अत्यंत सावधानी से तथा शक्तिशाली दूरदर्शकों का प्रयोग करके फोटोग्राफ लिये गये हैं और उन फोटोग्राफों को सूक्ष्मदर्शक की सहायता से नाप कर एरॉस (Eros) नामक छोटे ग्रह की दूरी का पता चलाया गया है । इस दूरी के ज्ञात होते ही सूर्य की दूरी का पता चल जाता है, क्योंकि सिद्धान्तत एरॉस और सूर्य की दूरियों का अनुपात हम जानते हैं । इस प्रकार पता चला है कि सूर्य हमसे लगभग सवा नौ करोड़ मील पर है ।

अब मान लीजिए कि ऊपर के चित्र में क पृथ्वी की किसी स्थिति को सूचित करता है । पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है और इसलिए ६ महीने में वह सूर्य के उस पार ख पर पहुँच जाती है । इस प्रकार क ख लगभग सवा नौ करोड़ मील के दुगुने के बराबर है । ज्योतिषी क और ख से किसी तारे ग की दिशाओं को, अपने बड़े दूरदर्शकों से लिये गये फोटोग्राफों में, सूक्ष्मदर्शक से नापता है, उन दिशाओं के अंतर से उसे कोण ग ख घ और ग क घ का अंतर ज्ञात हो जाता है । फिर, ज्योतिषी कोण ग क घ को सुगमता से नाप लेता है । इस प्रकार वह त्रिभुज क ख ग से क ग को, अर्थात् तारे के दूरी को, नाप लेता है । निकटस्थ तारों की दूरी नापने का यही सिद्धान्त है । तारों की दूरी नापने की इस रीति को त्रिकोणमितीय रीति कहते हैं । केवल कुछ सौ निकटस्थ तारों की ही दूरियाँ इस प्रकार नापी जा सकी हैं, क्योंकि दूरस्थ तारों की दिशाएँ क से भी और ख से भी इतनी बराबर रहती हैं कि उनका अंतर वेध के अनिवार्य त्रुटियों से दब जाता है और तारे की दूरी की गणना व्यर्थ हो जाती है । परंतु कुछ सौ तारों की दूरियाँ ठीक से ज्ञात हो जाने पर हम, नवीन रीतियों से, अन्य तारों की दूरियों की तुलना ज्ञात दूरियों से कर सकते हैं । अब इन रीतियों पर विचार करने के पहले हमें यह देख लेना चाहिए कि निकटस्थ तारे कितनी दूर हैं ।

सबसे पास का तारा भी हमसे लगभग ३×१०^{१३} मील पर है, अर्थात् उसकी दूरी लगभग

३,००,००,००,००,००,००० मील

*मंगल और बृहस्पति की कक्षाओं के बीच चलनेवाले छोटे-छोटे ग्रहों को 'अवांतर ग्रह' कहते हैं ।

है। यदि हम तारो, सूर्य और पृथ्वी का मानचित्र पैमाने के अनुसार बनाना चाहें और उसमें हम पृथ्वी को सुई की नोक के बराबर विंदु से निरूपित करें, अर्थात् पृथ्वी को १/१०० इंच व्यास के विंदु से निरूपित करें, तो निकटतम तारा पृथ्वी से ६०० मील पर पड़ेगा।

अति दूरस्थ तारों की दूरियाँ—कुछ तारे हमें खूब चमकीले दिखायी पड़ते है, अधिकाश बहुत मद। यह क्यों? निसदेह तारों में कुछ अपेक्षाकृत हमारे निकट हैं, अधिकाश उनसे कई गुनी अधिक दूरी पर हैं। परतु यह भी तो हो सकता है कि सब तारे एक ही वास्तविक चमक के न हो। दूसरे शब्दो में, यदि सब तारे एक ही दूरी पर खड़े कर दिये जायँ तो क्या वे सब एक ही चमक के होंगे? कदापि नहीं, कुछ बहुत चमकीले होंगे, कुछ कम, कुछ इतने मद प्रकाश के कि वे कठिनाई से दिखाई पड़ेंगे। परतु तारो के रग से उनकी वास्तविक चमक का बहुत-कुछ पता चल जाता है, विशेष कर जब दूरदर्शक पर त्रिपार्श्व लगा कर उनके प्रकाश के वर्णपट (स्पेक्ट्रम) की सूक्ष्म जाँच की जाती है। अब यदि वर्णपट की सूक्ष्म जाँच से यह निश्चित हो कि दो तारे एक ही वास्तविक चमक के है तो अवश्य ही वे प्रत्यक्षत कम या अधिक चमकीले केवल न्यूनाधिक दूरी के कारण होगे। यदि इन दो तारों में से एक की दूरी त्रिकोणमितीय रीति से नाप ली गयी है तो मद प्रकाश के तारे की दूरी तुरत ज्ञात हो जायगी, क्योकि भौतिक विज्ञान बताता है कि दूरी दुगुनी होने पर चमक चौथाई हो जाती है, दूरी तिगुनी होने पर चमक नवमाश ही रह जाती है, इत्यादि।

इस प्रकार मद तारो में से अधिकाश की दूरी का अनुमान कर लिया गया है।

प्रकाश-वर्ष—तारो की दूरियाँ बताने के लिए मील बहुत छोटा पड़ता है। इसलिए बडी दूरियो के लिए बहुधा प्रकाश-वर्ष का प्रयोग किया जाता है। प्रकाश-वर्ष वह दूरी है, जिसे प्रकाश एक वर्ष में तय करता है। भौतिक विज्ञान के विशेषज्ञो ने प्रकाश के वेग को नापा है और उन्हें पता चला है कि प्रकाश एक सेकंड में लगभग १,८६,००० मील चलता है। इसलिए एक प्रकाश-वर्ष लगभग

१८६,०००×६०×६०×२४×३६५ मील

अर्थात् लगभग ७×१०

अर्थात् लगभग ७×१०^{१२} मील के बराबर है। ध्रुवतारा हमसे लगभग ४७ प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है।

नीहारिकाओं की दूरियाँ—बहुत दिनो से ज्योतिषी अनुमान करते थे कि नीहारिकाएँ हम से बहुत दूर है, परतु कितनी दूर है इसके नापने की कोई रीति उन्हें नही मिल रही थी। ज्योतिषियो ने देखा था कि कुछ तारो की चमक स्थिर नही रहती, घटा-बढ़ा करती है। चमक घटने-बढने के भी कई नियम हैं। कुछ की चमक तो इस प्रकार घटती-बढती है कि स्पष्ट जान पडता है कि उनके चारो ओर कम प्रकाश का कोई दूसरा पिंड चक्कर लगा रहा है और जब यह पिंड तारे और हमारे बीच में आ जाता है तब तारा अशत छिप जाता है और इसलिए तारे का प्रकाश घट जाता है। परतु तारो की एक जाति ऐसी है कि उनका प्रकाश विशेष रूप से घटता-बढ़ता है और उनको पहचानने में कोई भूल नही हो सकती। इनको सेफीड (Cepheid) तारे कहते है, क्योकि ऐसे तारो में प्रमुख एक तारा सेफियस तारा-मडल का है। आकाश में सेफीड

तारे बहुत से हैं और उनमें कई ऐसे भी हैं, जिनकी दूरी और निजी चमक ज्ञात हैं। इन तारो के अध्ययन से पता चला है कि चमक घटने-बढ़ने के आवर्तकाल तथा वास्तविक चमक में एक अटूट संबंध है। बस हमारे लिए इतना ही पर्याप्त है, इससे नीहारिकाओ की दूरी जान ली जा सकती है। कारण यह है कि अधिकाश नीहारिकाओं में सेफीइड तारे भी हैं। बहुत से फोटोग्राफ लेने पर और घनत्व नापने पर इन तारो के प्रकाश के घटने-बढ़ने का नियम सुगमता से जाना जा सकता है। इस प्रकार उनके प्रकाश-परिवर्तन का आवर्तकाल ठीक-ठीक ज्ञात हो जाता है। तब आवर्तकाल से उनकी वास्तविक चमक की और वास्तविक चमक से उनकी दूरी की गणना सरलता से की जा सकती है, चाहे तारा कितना ही फीका क्यों न हो। केवल एक धोखा हो सकता है। कहीं कोई काली नीहारिका या प्रकाश सोखनेवाली अन्य गैस या धूलि तो बीच में नहीं है, जिसके कारण तारा मद प्रकाश का लगता है? इन बातो का विवेचन कर लेने पर, और तर्कों से सिद्ध कर लेने पर कि प्रकाश शोषक बीच में नहीं है और है तो कितना प्रकाश उसके कारण मिट गया है, सेफीइड तारो की दूरी बड़ी सुगमता से निकल आती है। तब उन नीहारिकाओ की दूरियाँ ज्ञात हो जाती है, जिन से ये तारे संबंधित है। इस प्रकार पता चला है कि बड़ा मैगिल्न-मेघ लगभग ७५,००० प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है, छोटा मैगिल्न-मेघ लगभग ८४,००० प्रकाश-वर्ष पर है। छोटी दिखायी पड़नेवाली सर्पिल नीहारिकाएँ इनसे लाखो गुनी अधिक दूरी पर है। इन दूरियो की गणना सरल है, परंतु उनकी कल्पना हमारी अनुभूति के परे है।

वर्णपट—काँच के त्रिपार्श्व द्वारा देखने पर मोमबत्ती की लौ, या अन्य प्रकाशमान वस्तु, कई रंगो की दिखाई देती है। शीशे का त्रिपार्श्व वही है जिसे शीशे की कलम भी लोग कहते है, पुराने ढंग की झाड-फानूस में शोभा के लिए बहुत-सी कलमें लटकायी जाती थी। इनके तीनो पहल समतल होते है और तीनो कोर एक दूसरे के समानांतर होते हैं। इसी प्रकार का त्रिपार्श्व, परंतु कम कोण का और काफी बड़ा, जिससे दूरदर्शक का ताल पूर्णतया ढक जाय, ताल के ऊपर लगा देने पर तारे का फोटोग्राफ बिंदु-सरीखा न आकर पट्टी के समान आता है, जिसे वर्णपट (स्पेक्ट्रम) कहते है और इस वर्णपट की जाँच से बहुत-सी बातो का पता चलता है। यदि साधारण फोटोग्राफ लेने के बदले रंगीन फोटोग्राफ लिया जाय या वर्णपट को आँख से देखा जाय तो वर्णपट रंगीन दिखायी पड़ेगा। इन रंगो का अर्थ समझने के लिए तारे के प्रकाश के बदले पहले हम मोमबत्ती के प्रकाश का अध्ययन करेंगे।

मान लीजिये, किसी प्रबंध से मोमबत्ती के एक बिंदु से आये प्रकाश को त्रिपार्श्व पर पड़ने दिया जाता है और त्रिपार्श्व को पार करने पर बने वर्णपट की हम जाँच करते हैं। हम देखेंगे कि वर्णपट के एक सिरे पर बैंगनी रंग है और दूसरे सिरे पर लाल रंग है। इन दोनो के बीच असख्य रंग है, जिन्हें हम मोटे हिसाब से सात रंगो में विभक्त कर सकते हैं। उनके नाम क्रमानुसार ये है—

बैंगनी, गहरा नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी, लाल।

इस वर्णपट में कहीं कोई काली रेखा न दिखायी पड़ेगी। परंतु यदि हम किसी गैस को तप्त करके प्रकाश उत्पन्न करें और उसे त्रिपार्श्व द्वारा देखें तो दूसरे ही प्रकार का वर्णपट हमें

प्राप्त होगा। उदाहरणत यदि हम सोडियम नामक तत्व को तप्त करें या स्पिरिट की लौ में थोड़ा साधारण नमक डाल दें (जो वस्तुत सोडियम क्लोराइड है) तो वर्णपट में केवल दो पीली रेखाएँ दिखायी पड़ेंगी। प्रत्येक तत्व का वर्णपट निराला ही होता है, जिससे पता चल जाता है कि किस तत्व के होने से अमुक वर्णपट उत्पन्न हुआ है। साधारण निपीड (प्रेशर) पर तप्त गैसों के वर्णपट में साधारणत चमकीली रेखाएँ रहती हैं।

फिर, यदि मोमबत्ती का प्रकाश तप्त सोडियम वाष्प द्वारा होकर आवे जिसका तापक्रम मोमबत्ती के तापक्रम से कम हो तो वर्णपट में अन्य सब रग तो वर्तमान रहेंगे, केवल वही प्रकाश नहीं रहेगा जो सोडियम-प्रकाश से हमें मिलता है, अर्थात् रगीन वर्णपट हमें अवश्य मिलेगा, परतु उसमें उस स्थान पर दो काली रेखाएँ दिखायी देंगी जहाँ केवल सोडियम प्रकाश से दो पीली रेखाएँ दिखायी पड़ती है। जब कभी श्वेत तप्त पिंड से चला प्रकाश अपेक्षाकृत ठडे गैसों से होकर आता है तो काली रेखाओंवाला वर्णपट उत्पन्न होता है।

सूर्य के प्रकाश के वर्णपट में बहुत-सी काली रेखाएँ दिखायी पड़ती है। इन काली रेखाओं के स्थानों को ज्ञात गैसों की रेखाओं के स्थानों से तुलना करने पर हमें पता चलता है कि सूर्य के बाहरी वातावरण में कौन-कौन सी गैसें है। उदाहरणत, वर्णपट के पीले भाग में हमें वे दो काली रेखाएँ भी दिखायी पडती है, जो सोडियम वाष्प से ही उत्पन्न होती है। इससे पता चलता है कि सूर्य का भीतरी भाग अत्यत तप्त है, वहाँ से श्वेत प्रकाश चारो ओर बिखरता है, सूर्य की बाहरी तह उतनी तप्त नही है, और उसमें सोडियम वाष्प अवश्य है। इसीलिए हमें वर्णपट में दो काली रेखाएँ वहाँ दिखायी पड़ती है जहाँ तप्त सोडियम वाष्प के वर्णपट में दो चमकीली पीली रेखाएँ दिखायी पड़ती है।

स्पष्ट है कि वर्णपट की जाँच से, जिसे वर्णपट विश्लेषण कहते है, हम यह बता सकते है कि सूर्य की रासायनिक सरचना कैसी है। इसी प्रकार हम तारों की रासायनिक सरचना के विषय में भी बहुत-सी बातें जान सकते है।

यदि प्रकाश का उद्गम स्थान स्थिर रहने के बदले वेग से हमारी ओर आ रहा है, या हमसे दूर भाग रहा है, तो रेखाओं के स्थान में थोडा सा अतर पड जाता है। भौतिक विज्ञान का वह सिद्धान्त जिसे डॉपलर के नाम पर लोग डॉपलर सिद्धान्त कहते है, यह बताता है कि कितने वेग के कारण वर्णपट की रेखाओं में कितना अतर पड़ता है। इसलिए वर्णपट में रेखाओं की स्थितियों के अतर को माप कर हम बता सकते है कि उद्गम स्थान कितने मील प्रति घटे के वेग से हमारी ओर आ रहा है या हम से दूर जा रहा है। उदाहरणत, सूर्य अपनी धुरी पर घूमता रहता है। इसलिए इसके बिम्ब का एक किनारा हमारी ओर आता रहता है और दूसरा किनारा हमसे दूर जाता रहता है। दूरदर्शक के ताल से सूर्य का प्रतिबिंब बनाकर और उसके दाहिने और बायें किनारो के प्रकाशो का अलग-अलग वर्णपट बनाकर तुलना करने से स्पष्ट पता चलता है कि सूर्य किस वेग से अपनी धुरी पर नाच रहा है।

इसक आतारक्त वर्णपट से उद्गमस्थान के तापक्रम का भी पता चलता है। किसी वस्तु को यदि थोडा ही गरम किया जाता है तो वह लाल हो कर ही रह जाता है, यदि अधिक गरम किया जाता है तो उसका प्रकाश लाल के बदले पीला हो जाता है। पिंड के अधिक तप्त होने पर प्रकाश श्वेत हो जाता है। और भी अधिक तप्त हो जाने पर प्रकाश निलछौंह हो जाता है। इसलिए वर्णपट के फोटोग्राफ में यह देख कर कि घनत्व किस भाग में महत्तम है, उद्गम स्थान के तापक्रम का भी अनुमान किया जा सकता है।

हम देखते है कि वर्णविश्लेषण अत्यत महत्वपूर्ण है और इससे हमें कई बातें ज्ञात हो सकती हैं।

फोटोग्राफी—इन दिनों वैज्ञानिक अनुसधानो में फोटोग्राफी का बहुत प्रयोग किया जाता है। इसके कई कारण हैं। ससार में बडे दूरदर्शक इने-गिने है। उनका समय बहुमूल्य है। चटपट फोटोग्राफ लेकर उसे सुचित से निरीक्षण करने के बदले दूरदर्शक में ही आँख लगाने से दूरदर्शक का बहुत-सा अमूल्य समय नष्ट होता है। फिर फोटोग्राफ को सूक्ष्मदर्शक यत्र से नापने में जो सुविधा है वह सुविधा आँख ऊपर उठाये दूरदर्शक के नीचे पडे रह कर काम करने में नही प्राप्त हो सकती। अत में, फोटोग्राफी के प्लेट में एक विशेष गुण है जो हमारी आँखों में नही है। यदि आकाशीय पिंड का प्रकाश इतना मद हो कि बडे दूरदर्शक में भी वह हमें न दिखायी पडे, तो भी फोटोग्राफो में वह हमें दिखायी दे जा सकता है। कारण यह है कि फोटो के प्लेट पर मद प्रकाश का परिणाम सचित होता चलता है। यदि प्रकाशदर्शन (अर्थात् एक्सपोज़र) पर्याप्त दिया जाय तो फोटोग्राफो में बहुत-से मद प्रकाशवाले ब्योरे देखे जा सकते है, जो अन्य किसी रीति से हमें नही दिखायी दे सकते। नीहारिकाओ के अध्ययन में फोटो के प्लेटो का यह गुण विशेष उपयोगी है, क्योकि दूरस्थ नीहारिकायें सब अत्यत मद प्रकाश की हैं।

निजी गति—तारे साधारणत स्थिर तारे (fixed stars) कहलाते है, क्योकि पचीस-पचास वर्ष में उनका स्थिति परिवर्तन उपेक्षणीय होता है। परतु विश्व की सरचना की खोज में तारो की स्थिति-परिवर्तन महत्वपूर्ण है। यदि हम तारो का फोटोग्राफ आज लें और उस फोटोग्राफ की तुलना उसी यत्र से पचास वर्ष पहले लिये गये फोटोग्राफ से सूक्ष्मतापूर्वक करें, तो हम देखेगे कि कुछ तारे, जो पृष्ठभूमि के मद तारो से साधारणत अधिक चटक है, अपने पहले वाले स्थान से वस्तुत हट गये है। यह नाप कर कि तारा कितना हटा है और यह जानने पर कि तारे की दूरी कितनी है, हम सरल गणना द्वारा जान सकते है कि हमारे देखने की दिशा से समकोण बनाती हुई दिशा में तारे का वेग क्या है। फिर, देखने की दिशा में हम तारे का वेग डॉपलर सिद्धान्त से प्राप्त कर ही सकते है। इस प्रकार हमें पूर्ण ज्ञान हो जाता है कि तारा वस्तुत किस दिशा में और किस वेग से जा रहा है।

तौल—गतिविज्ञान में एक सूत्र है, जिससे यह ज्ञात रहने पर कि दो तारे एक दूसरे से कितनी दूरी पर है और उनमें से एक तारा दूसरे तारे की परिक्रमा कितने वर्षों में कर

लेता है, हम दोनों तारों की सम्मिलित तौल बता सकते हैं। हरशेल ने (१७३८-१८२२) अपने वेधों से पता लगाया था कि कई तारा-युग्मों में दोनों तारे वस्तुतः एक दूसरे से संबंधित हैं। एक तारा दूसरे की चारों ओर परिक्रमा करता है। कुछ युग्म अवश्य ऐसे हैं कि उनमें से एक तारा पृथ्वी से बहुत दूर है और दूसरा बहुत निकट, केवल प्रायः एक दिशा में होने के कारण वे तारा युग्म से जान पड़ते हैं। तो भी असली तारा-युग्म आकाश में बहुत से हैं और उनमें जिन किसी की भी दूरी नापी जा सकी है या अन्य किसी रीति से उनकी दूरी का अनुमान किया गया है, उसकी तौल का पता पूर्वोक्त गतिवैज्ञानिक सूत्र से चल गया है।

नाप—कुछ तारों का व्यास भी नापा जा सका है। अधिकांश तारे हमसे बहुत दूर हैं, साथ ही उनका व्यास भी पर्याप्त बड़ा नहीं है। इसलिए उनका कोणीय व्यास बड़े-से-बड़े दूरदर्शक में भी शून्य ही जान पड़ता है। सिद्धान्त और तर्क से हम जानते हैं कि कुछ तारे कम घनत्व के और बहुत बड़े व्यास के होते हैं। उनको हम दैत्य तारे (जायंट स्टार्स) कहते हैं। कुछ तारे इनसे भी बड़े होते हैं। उन्हें अतिदैत्य तारे (सुपर-जायंट स्टार्स) कहते हैं। कुछ तारे बहुत अधिक घनत्व के और कम व्यास के होते हैं। इनको बौना या वामन तारा (ड्वार्फ स्टार्स) कहते हैं। हमारा सूर्य वामन तारा है। ज्योतिषियों का अनुमान यह है कि तारा पहले कम घनत्व का और दूर तक विस्तृत रहता है। फिर अपने ही आकर्षण से सिमटते-सिमटते उसका व्यास कम होता जाता है और तापक्रम बढ़ता जाता है। दैत्य तारे साधारणतः कुछ लाल होते हैं। तारों में वे बच्चे हैं। अधिक आयु होने पर वे अधिक ठस, व्यास में छोटे और तापक्रम में अधिक तप्त होते जाते हैं, जिससे उनका प्रकाश श्वेत होता जाता है। घनत्व बढ़ते-बढ़ते एक सीमा ऐसी आ जाती है जब सब अणु एक दूसरे से प्रायः सट जाते हैं और अधिक सटने के लिए गुंजाइश नहीं रहती। फिर वे धीरे-धीरे ठंढा हो चलते हैं। अंत में वे प्रकाशरहित हो जाते हैं।

दैत्य और बौने तारों का संक्षिप्त वर्णन यहाँ इसलिए कर दिया गया है कि आगामी अध्यायों में इन शब्दों का प्रयोग किया जायगा।

श्रेणी—तारों की चमक बताने की यह रीति है कि उनकी श्रेणी (मैगनीट्यूड) बता दी जाय। प्राचीन ज्योतिषियों ने सबसे चमकीले तारों को प्रथम श्रेणी में रखा था और उन मंद तारों को जो कोरी आँख से दिखाई भर पड़ जाते हैं, छठी श्रेणी में रखा था। अन्य तारों को, उनकी चमक के अनुसार, द्वितीय, तृतीय आदि श्रेणियों में रखा था। आधुनिक ज्योतिषियों ने इस वर्गीकरण को अधिक परिष्कृत कर लिया है। नवीन प्रथा के अनुसार, अधिकांश चमकीले तारों की श्रेणियाँ प्रायः पहले जैसी रह गयी हैं, परंतु अब दशमलव लगी श्रेणियों का भी अर्थ निकल सकता है। नवीन परिभाषा एक सूत्र के अनुसार दी जाती है, जिसके उल्लेख की यहाँ आवश्यकता नहीं है। केवल इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि श्रेणी में एक की कमी होने से चमक लगभग ढाई गुनी बढ़ती है (वस्तुतः २.५१२ गुनी बढ़ती है)। इस प्रकार नवीन परिभाषा के अनुसार श्रेणी १.० का तारा श्रेणी २.० के तारे से ढाई गुना अधिक चमकीला है। रोहिणी (ऐल्डिबैरन) नामक तारा प्रायः ठीक प्रथम श्रेणी का है। अगस्त्य (कैनोपस) की श्रेणी

० २ है और लुब्धक (सिरियस) की, जो आकाश का सबसे अधिक चमकीला तारा है, श्रेणी –१ ६ है। माउंट विलसन के सौ इंचवाले दूरदर्शक से एक्कीसवी श्रेणी तक के तारों का फोटोग्राफ उतर आता है।

इतिहास—प्राचीन यूनानी ज्योतिषी हिपार्कस (लगभग १९०-१२५ ई० पू०) ने प्रथम तारा-सूची बनायी थी। उसमें भी दो ज्योतिर्मय आकाशीय धब्बों का उल्लेख है और टॉलमी (लगभग १३८ ई०) ने अपने अलमाजेस्ट नामक पुस्तक में पाँच मेघिल तारों को सम्मिलित किया था, परंतु ये वस्तुएँ वास्तविक नीहारिकाएँ न थी। दूरदर्शक से देखते ही स्पष्ट हो जाता है कि वे तारा-पुंज है। हाँ, अरब के अलसूफी (९०३-९८६) ने अपनी 'स्थिर तारो की पुस्तक' में देवयानी नक्षत्र-मंडलवाली नीहारिका का उल्लेख किया है। १५वीं शताब्दी में पोर्चुगल के नाविक दक्षिण जाया करते थे और वे उन मेघों को जानते थे, जिनका नाम अब मैगिलन-मेघ पड़ा है। गैलीलियो (१५६४-१६४२) ने दूरदर्शक का आविष्कार १६०९ में किया और उसके कुछ ही वर्ष पश्चात् नीहारिकाओं का पता एक-एक करके चलने लगा। हायगेन्स (१६२९-१६९५) ने मृगव्याध (ओरायन) नीहारिका का प्रथम वर्णन और चित्र सन १६५६ ई० में दिया। १७१५ में न्यूटन के मित्र हैली (१६५६-१७४२) ने संभवत प्रथम नीहारिका-सूची बनायी। हैली वही ज्योतिषी था जिसके नाम से हैली पुच्छल तारा प्रसिद्ध है। परंतु हैली की सूची में कुल ६ 'प्रकाशमय धब्बे और बत्तियों' की चर्चा है। इसके बाद कई सूचियाँ छपी और प्रत्येक में पहले से अधिक नीहारिकाओं का उल्लेख रहता था। फ्रांसनिवासी चार्ल्स मेसियें ने (१७३०-१८१७) अपनी सूची का, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है, अंतिम संस्करण १७८१ में प्रकाशित किया, इसमें १०३ नीहारिकाएँ थी। विलियम हरशेल (१७३८-१८२२) ने यूरेनस का आविष्कार किया था और फिर उसके लड़के जॉन हरशेल (१७९२-१८७१) ने बड़े-बड़े दूरदर्शकों से आकाश की खोज की। बड़े हरशेल ने अपने हाथ के बने दूरदर्शक से लगभग ढाई हजार नीहारिकाओं का पता लगाया। वह मृगव्याध (ओरायन) नीहारिका से इतना आश्चर्यचकित और मोहित हो गया था कि उसने अपने जीवन का अधिकांश भाग नीहारिकाओं और युग्म-तारों की खोज में व्यतीत किया। छोटे हरशेल ने भी स्वयं अपने हाथ से १८ इंच का बढ़िया दूरदर्शक बनाया और उससे लगभग ५०० नयी नीहारिकाओं का पता लगाया। इंगलैंड से आकाश का दक्षिणी गोलार्ध समूचा दिखायी नहीं पड़ता। इसलिए दक्षिणी अफ्रीका में जाकर उसने दक्षिणी नीहारिकाओं का निरीक्षण किया। मैगिल्न मेघों के सूक्ष्म निरीक्षण के अतिरिक्त उसने लगभग १७०० दक्षिणी नीहारिकाओं की सूची प्रकाशित की। इस सूची में कई नीहारिकाओं के चित्र भी खींचे गये थे। इंगलैंड लौटकर उसने अपने देखे और पिता द्वारा आविष्कृत नीहारिकाओं की विस्तृत सूची १८६४ में छपाई, जिसमें पाँच हजार नीहारिकाओं का उल्लेख था। इसीके आधार पर १८८८ में ड्रायर ने अपनी सूची 'न्यू जेनरल कैटलग ऑफ नेब्युली' प्रकाशित की, जिसका उल्लेख आज भी एन० जी० सी० (N G C) के संक्षिप्त नाम से किया जाता है। इसके दो परिशिष्ट क्रमानुसार १८९५ में और १९०८ में

छपी जो 'इडेक्स कैटलग' (आई० सी०, I C) के नाम से प्रसिद्ध है। इन तीनों सूचियों में कुल मिला कर १३,००० से भी अधिक नीहारिकाओं का समावेश है।

नीहारिकाओं की फोटोग्राफी का इतिहास—फोटोग्राफी के आविष्कार के बाद लोगों ने आकाशीय पिंडो का फोटोग्राफ लेना चाहा। सफलता कई लोगों को प्राय एक साथ ही मिली। अमरीका के हेनरी ड्रेपर (१८३७-८२) ने १८८० में मृगव्याध (ओरायन) नीहारिका का अच्छा फोटोग्राफ खींचा। फ्रास में जैनसन (१८२४-१९०७) ने १८८१ में और कुछ वर्ष बाद इगलैंड में कॉमन (१८४१-१९०३) ने तथा आइज़क रॉबर्ट्स (१८२९-१९०४) ने बहुत अच्छे चित्र नीहारिकाओं के खींचे। पॉल हेनरी और प्रॉस्पर हेनरी दो भाई थे, जिन्होने फ्रास में किचपिचिया (कृत्तिका) तारा-पुज का फ़ोटोग्राफ खींचा और दिखाया कि ये तारे वस्तुत अति क्षीण नीहारिका में उलझे हुये है। परन्तु अभी तक फोटोग्राफ साधारण दूरदर्शकों से खींचे जाते थे। १८८९ ई० में अमरीका की प्रसिद्ध लिक-वेधशाला के सचालक बारनार्ड ने मनुष्य चित्रण के लिए बने बडे छिद्र (अपर्चर) वाले पोर्ट्रेट लेंजों से नीहारिकाओं के फोटोग्राफ लिये। तब पता चला कि बहुत-से तारे अत्यत क्षीण नीहारिकाओं से घिरे हुये हैं। उसने दिखाया कि किचपिचिया के सभी तारे अत्यत झीनी नीहारिका के बीच में है। बारनार्ड ने कई काली नीहारिकाओं का भी पता लगाया और प्रमाणित किया कि आकाश के कई स्थलों में हलकी धूलि है, जिसके कारण वहाँ के तारे कुछ धूमिल दिखायी पडते हैं। ऑस्ट्रेलिया के रसेल ने १८९० ई० में बारनार्ड की रीति से दक्षिणी नीहारिकाओं के फोटोग्राफ़ लिये और जर्मनी के मैक्स वोल्फ ने १८९१ ई० में छोटी नीहारिकाओं की सूची बनानी विधिवत् आरभ कर दी।

१८९९ ई० में लिक-वेधशाला के ३६ इचवाले दर्पणयुक्त दूरदर्शक से सर्पिलाकार नीहारिकाओं का फोटोग्राफ लेना और उनका ब्योरेवार अनुसधान करना आरभ किया गया। उसके पहले कई ज्योतिषियों ने कुछ सर्पिल नीहारिकाओं को देखा था और उनका वर्णन किया था, परन्तु कीलर के काम से पता चला कि अधिकाश नीहारिकाएँ सर्पिलाकार हैं। सन १९०० ई० में उसने अनुमान किया कि उसके दूरदर्शक से कम-से-कम सवा लाख सर्पिल नीहारिकाओं का पता चल सकता है, परन्तु उसी दूरदर्शक से अधिक अनुभव के बाद कर्टिस ने १९१९ ई० में अनुमान किया कि आकाशगगा के क्षेत्र को छोड आकाश के अन्य भागों में कम से कम १० लाख नीहारिकाएँ हैं। आधुनिक समय में अमरीका की हारवर्ड-कालेज-वेधशाला में नीहारिकाओं पर खूब काम हुआ है। दक्षिणी नीहारिकाएँ छूट न जायँ, इस उद्देश्य से इस कालेज ने १९०० ई० में अरेक्विपा (पेरू, दक्षिणी अमरीका) में और फिर १९२७ ई० में ब्लोमफ़ानटाइन (दक्षिणी अफरीका) में निजी वेधशालाएँ बनवाई। विशेष दूरदर्शक केवल तारा और नीहारिकाओं की फोटोग्राफी के लिए बनवाया, जिसमें प्रसिद्ध ब्रूस दूरदर्शक भी था। इसके ताल का व्यास २४ इच है और एक साथ ही काफी बडे क्षेत्र का फोटोग्राफ लेता है। स्वय हारवर्ड में उपर्युक्त यत्र तो था ही। सन १९३० में वहाँ के सचालक हारलो शेपली ने अठारहवी श्रेणी तक की सब नीहारिकाओं का फोटोग्राफ खिचवाया और इस प्रकार हजारो नई नीहारिकाओ का पता चला।

इधर यह काम हो ही रहा था, उधर दूसरों ने अधिकाधिक बड़े दूरदर्शक बनवाने की सोची। यह देखकर कि लिक-वेधशाला के ३६ इंचवाले दूरदर्शक से बहुत अच्छा काम हो सका है, माउंट विलसन के जी० डब्ल्यू० रिची (Ritchey) ने ६० इंच व्यास का दर्पणयुक्त दूरदर्शक बनवाया और कई वर्ष तक (१९०८-१७) उसने इससे नीहारिकाओं के फोटोग्राफ लिये। रिची के फोटोग्राफ बहुत तीक्ष्ण उतरते थे और कई सर्पिला की तारामय रचना उसके चित्रों से स्पष्ट हुई। वहाँ के संचालक हेल को अनुभव हुआ कि अधिक बड़े दूरदर्शक से अधिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए उसने १०० इंच व्यास के दूरदर्शक की योजना की। इसे सन् १९१७ ई० में माउंट विलसन पर स्थापित किया गया और तब से आज तक इस यंत्र से काम हो रहा है। हेल ने शीघ्र अनुभव किया कि और भी बड़ा दूरदर्शक हो तो अधिक अच्छा होगा। बहुत पूछ-ताछ और खोज के बाद निश्चय किया गया कि २०० इंच व्यास का दूरदर्शक बन सकता है। सन् १९२८ ई० से ही इसके बनाने की योजना होने लगी, परन्तु द्वितीय विश्वव्यापी युद्ध के कारण इसका काम स्थगित रहा। अब यह बन गया है और आरोपित कर दिया गया है। इसमें अंतिम सुधार अभी हो ही रहे हैं, परन्तु पूर्ण आशा है कि निकट भविष्य में इससे कई नवीन बातों का पता चलेगा।

इस अध्याय में हमने देख लिया कि ज्योतिषी किस प्रकार नीहारिकाओं का अध्ययन करता है, किस प्रकार उनकी दूरी ज्ञात करता है और किस प्रकार उनको नापता और तौलता है। आगामी अध्याय में सात निकटतम नीहारिकाओं का वर्णन किया जायगा।

द्वितीय अध्याय

निकटतम नीहारिकाएँ

मैगिलन मेघ—पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि चार नीहारिकाएँ औरों की अपेक्षा अधिक निकट हैं। हम इस अध्याय में इन्हीं नीहारिकाओं पर विशेष विचार करेंगे। इन चारों में सबसे बड़ा मैगिलन मेघ जान पड़ता है। यह स्वर्ण-मत्स्य (डोरेडो) तारामण्डल में है। छोटा मैगिलन-मेघ टूकन तारामंडल में है। दोनों ही मेघों के कुछ भाग इन तारामंडलों के बाहर तक पहुँच जाते हैं। कोरी आँख से, या छोटे दूरदर्शक से, देखने पर या साधारण प्रकाशदर्शन (एक्सपोजर) देकर फोटोग्राफ खींचने पर, ये मेघ विशेष बड़े नहीं दिखायी पड़ते। छोटे मेघ का व्यास चार अंश से कुछ कम ही है। यह स्मरण रखने पर कि चद्रमा का व्यास लगभग आधा अंश है, हम चार अंश का अनुमान सुगमता से कर सकते हैं। बड़े मेघ का व्यास आठ अंश से कुछ कम है। दोनों की आकृति अनियमित है, अर्थात वे न तो वृत्ताकार और न दीर्घवृत्ताकार हैं। तारों का घनत्व भी उनमें सब जगह एक-सा नहीं है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में भी ज्योतिषियों ने इन मेघों की सरचना का भेद नहीं जान पाया था। कितने तारे, कितनी नीहारिकाएँ और कितने तारापुंज इन मेघों में अमुक दूरदर्शक से दिखायी पड़ते हैं, बस इतने की ही खोज हो पायी थी।

जब तक हारवर्ड वेधशाला ने दक्षिणी गोलार्ध में अपनी शाखा नहीं खोल पायी थी तब तक स्थिति ऐसी ही रही। वहाँ शाखा खुलने पर, और न्यूयॉर्क की मिस कैथरिन ब्रूस से पर्याप्त धन दान में मिलने पर, स्थिति बदलने लगी। मिस ब्रूस के दान से ब्रूस दूरदर्शक बना, जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है। अपने समय में ब्रूस-दूरदर्शक बडा ही शक्तिशाली था। इसके ताल का व्यास २४ इंच था। एक घंटे के प्रकाशदर्शन से इस यंत्र से सोलहवीं श्रेणी तक के तारों का फोटोग्राफ उतर आता था और एक बार में ही आकाश के उतने क्षेत्र का फोटोग्राफ उतरता था, जितना सप्तर्षि तारामडल के प्रथम चार तारों के बीच स्थान है। साधारण दूरदर्शकों से तो समूचे चद्रमा का भी फोटोग्राफ नही उतर पाता है। ब्रूस-दूरदर्शक से सारे आकाश के फोटोग्राफ लेने की योजना की गयी थी। इसीलिए मैगिल्न-मेघों की पारी आने में कई वर्ष लगे। पहले तो इतना ही पता लगा कि इन मेघो में हजारों तारे और बहुत से तारापुंज तथा नीहारिकाएँ हैं। परन्तु महत्वपूर्ण नवीन बातों का पता तब लगा जब फोटोग्राफों की जाँच मिस लीविट ने अमरीका के केम्ब्रिज शहर में की। मिस लीविट ने देखा कि इन मेघों में बहुत-से तारे ऐसे हैं, जिनकी चमक प्रत्येक प्लेट पर एक-सी नही है। उन्होंने बड़ी सावधानी से नापना और उनका लेखा रखना आरम्भ किया। उस समय सेफ़ीइड तारों की चमक और चक्रकाल में संबंध रहने का पता नही था। इसलिए मैगिल्न-मेघों की दूरी का भी कोई पता किसी को नही था। इसका भी किसी को अनुमान नहीं था कि यह सब नाप-जोख किस काम आयगा। परन्तु १९०६ ई० में मिस लीविट ने बड़े मेघ के ८०८ परिवर्तनशील तारों की सूची और छोटे मेघ के ९६९ परि-

वर्तनशील तारो की सूची प्रकाशित की । इन सूचियो से पता चला कि ऐसे तारो की महत्तम और न्यूनतम चमको का अनुपात सभी के लिए उतना ही —लगभग ढाई गुना—होता है, चाहे तारा खूब चमकीला हो, चाहे कम ।

इन परिवर्तनशील तारो के अतिरिक्त मेघा में प्राय सभी अन्य प्रकार के तारे पाये गये, लाल दैत्य भी है और नीले बौने भी । इनके अतिरिक्त ऐसे तारे भी इन मेघो में थे, जो अपने विशेष वर्णपट के कारण तुरन्त पहचान लिये जा सकते थे; परन्तु जो आकाशगगा को छोड आकाश के अन्य भागो में नही देखे गये थे । इन बाता से सन्देह होने लगा कि मेघो की सरचना सभवत वैसी ही है जैसी हमारी मदाकिनी-सस्था की ।

मैगिलन-मेघो में कई नीहारिकाएँ भी है । सारे आकाश में इने-गिने चार-पाँच बडी गैसमय नीहारिकाओ में स्थान पाने योग्य वह नीहारिका भी है, जिसे पाश नीहारिका (अँग्रेजी में लूप नेव्युला) कहते है । यह बडे मेघ में है और ३० स्वर्ण मत्स्य के नाम से प्रसिद्ध है । मेघो की दूरी अब हमें ज्ञात हो गयी है । इसलिए हम पाश नीहारिका की वास्तविक लबाई-चौडाई का अनुमान कर सकते है । वस्तुत यह नीहारिका बहुत बडी है । देखने में ओरायन नीहारिका हमको सबसे बडी जान पडती है, परन्तु ऐसा इसलिए है कि वह हमारे निकट है। यदि पाश नीहारिका को हम ओरायन नीहारिका की बगल में खडी कर सकते तो पाश नीहारिका के आगे ओरायन नीहारिका नन्ही-सी बच्ची से भी छोटी लगती । दोना नीहारिकाआ का प्रकाश प्राय एक-सा है । दोनो पीछेवाले तारो को छिपा देती है, उनमें कोई ऐसा द्रव्य है, सभवत गर्द है, जो उनके पीछे स्थित तारो के प्रकाश को दबा देता है । दोनो नीहारिकाओ में अत्यन्त चमकीले तारे है और सभवत दोना इन्ही तारो की विकिरण से ही शक्ति पाकर चमकती है, परन्तु पाश नीहारिका बहुत बडी है । उतनी बडी नीहारिका आकाशगगा भर में कही नही है ।

पाश नीहारिका के मध्य में सौ से कुछ अधिक अति दैत्य निलर्लोह तारे है, जो नीहारिका के प्रकाश में छिपे हुए है । जब नीहारिका का फोटोग्राफ लाल प्रकाश छनना लगा कर लिया जाता है तब इन तारो का पता विशेष रूप से चलता है ।

मैगिलन मेघो में थोडे-से गोलाकार तारापुज भी है और बीसो किचपिचिया के समान साधारण तारापुज है ।

अगले अध्याय में पता चलेगा कि हमारी मदाकिनी-सस्था स्वय एक नीहारिका है और हम उसी के बीच में है । विश्व में असख्य इसी प्रकार की नीहारिकाएँ है, जिनकी रचना हमारी मदाकिनी सस्था से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है । ये नीहारिकाएँ एक दूसरे से दूर-दूर पर है और बीच में बहुत-सा प्राय रिक्त स्थान है । किसी एक नीहारिका के सूक्ष्म अध्ययन से हम समस्त नीहारिकाओ के बारे में बहुत-सी बाते जान सकते है । परन्तु जिस नीहारिका में हम स्वय स्थित है, अर्थात हमारी मदाकिनी-सस्था, वह अध्ययन के लिए विशेष उपयुक्त नही है, क्योकि इसके

तारे हमसे विभिन्न दूरियों पर हैं; कोई तारे वस्तुतः कम चमकीले होते हुये भी हमें बहुत चमकीले जान पड़ते हैं और यह केवल इसलिए कि वह तारा हमारे बहुत पास है। मैगिलन-मेघों में यह कठिनाई नहीं है। प्रत्येक मेघ एक नीहारिका है और उसके तारे हमसे प्रायः एक ही दूरी पर हैं। अवश्य ही, ये मेघ स्वयं बहुत विस्तृत हैं, परन्तु उनकी लम्बाई-चौड़ाई उनसे पृथ्वी तक की दूरी की तुलना में प्रायः उपेक्षणीय है। अवश्य ही, हमारी आकाशगंगा के कुछ तारे भी मैगिलन-मेघों की दिशा में रहने के कारण भ्रमवश मेघों के सदस्य गिन लिये जाते होंगे, परन्तु ऐसे तारों की गिनती बहुत ही कम होगी। इसलिए जब हम मेघों के तारों का अध्ययन करते हैं तब तारों की वास्तविक चमकों के विषय में सच्ची बातें ज्ञात होती हैं। विशेषकर, हमें तारे के वर्णपट और उसकी वास्तविक चमक का सच्चा ज्ञान होता है।

मैगिलन-मेघों में संबंध—क्या दोनों मैगिलन मेघों में कोई संबंध है? छोटे मेघ की दूरी ८४,००० प्रकाश-वर्ष है और बड़े की ७५,००० प्रकाश-वर्ष। इस प्रकार दोनों की दूरियों में विशेष अंतर नहीं है। पृथ्वी और इन मेघों के बीच जो आकाशीय धूलि है उसके अवश्य ही ये मेघ आवश्यकता से कुछ अधिक मंद प्रकाश के दिखायी पड़ते हैं। यह धूलि कहीं गाढ़ी, कहीं हल्की हो सकती है और इसलिये दोनों मेघों की नपी दूरियाँ उतनी विश्वसनीय नहीं हैं जितनी वे आकाशीय धूलि के अभाव में होतीं।

मेघों के बीच आभासी कोणीय दूरी २१ अंश है। एक दूसरे से वे ३०,००० प्रकाश-वर्ष की दूरी पर हैं। यह तो एक के केन्द्र से दूसरे के केन्द्र तक की दूरी है। दोनों के छोरों के बीच की न्यूनतम दूरी बड़े मेघ के व्यास से कुछ कम है। वस्तुतः, जब बहुत अधिक प्रकाश-दर्शन देकर इन मेघों का फोटोग्राफ खींचा जाता है, जिसमें मेघों के मंदतम भागों का भी फोटोग्राफ खिंच आता है, तो ऐसा जान पड़ता है कि संभवतः दोनों मेघ संलग्न हैं। प्रत्येक मेघ में केन्द्र में घनी बस्ती है—वहाँ तारे आदि बहुत हैं—और केंद्र से दूर पर तारों की संख्या बहुत कम हो जाती है। यद्यपि अभी इसका पक्का प्रमाण नहीं मिला है, तो भी संभव जान पड़ता है कि दोनों मेघ एक ही संस्था की दो घनी आबादियाँ हैं।

हमारी मंदाकिनी-संस्था के समतल से इन मेघों की दूरियाँ ४०,००० और ६०,००० प्रकाश-वर्ष हैं। इसलिए अनुमान किया जाता है कि हमारी मंदाकिनी-संस्था का गुरुत्वाकर्षण इन मेघों पर अवश्य ही काफी पड़ता होगा। परन्तु यह कहना कठिन है कि मेघ हमारी ओर आ रहे हैं अथवा हमसे दूर भाग रहे हैं या साथ-साथ चल रहे हैं। दृष्टिरेखा से समकोणिक गति तो इन मेघों की प्रायः शून्य है। परन्तु दृष्टिरेखा में बड़े और छोटे मेघ की गतियाँ क्रमानुसार १७० मील प्रति सेकंड और १०० मील प्रति सेकंड निकलती हैं। परन्तु सूर्य और पृथ्वी की जोड़ी स्वयं मंदाकिनी संस्था में तेजी से चल रही है। ज्ञात वेग काटने पर मेघों का वेग ० और ३७ मील प्रति सेकंड निकलता है। परन्तु हमारी नापें बहुत सच्ची नहीं हो पातीं। इसलिए निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि छोटा मेघ वस्तुतः ३७ मील प्रति सेकंड के हिसाब से हमसे दूर जा रहा है या नहीं। भविष्य के बड़े दूरदर्शकों से अधिक स्पष्ट रूप से पता चलेगा कि सच्ची

बात क्या है। सौ, दो सौ, वर्ष बीतने पर दृष्टिरेखा से समकोणिक वेग का अच्छा पता चल सकेगा।

अभी तो इतने ही से संतोष करना पड़ेगा कि पृथ्वी अथवा सूर्य के हिसाब से मैगिलन-मेघ या तो चल नहीं रहे हैं या चल भी रहे हैं तो विशेष वेग से नहीं।

आकाशगंगा

ब्रह्मांड—*अँग्रेजी में आकाशगंगा को मिल्की वे (दूधिया मार्ग) कहते हैं और गैलैक्सी* शब्द का भी यही अर्थ है, परन्तु अब आधुनिक ज्योतिषी गैलैक्सी को दूसरे अर्थ में प्रयुक्त करने लगे हैं। जब कोई आकाशीय पिंड दूरदर्शक में प्रकाशमय धुएँ या बादल के समान दिखायी पडता है तब उसे नेब्युला कहते हैं, परन्तु यदि अध्ययन के पश्चात् पता चले कि वह बहुत से तारों का समूह है और संभवत वह हमारी मंदाकिनी-संस्था के समान है तो उसे ज्योतिषी अब गैलैक्सी कहते हैं। उन्हें द्वीपविश्व (आइलैंड यूनिवर्स) भी कहते हैं। हम भी ऐसे समूहों को ब्रह्मांड या द्वीप विश्व कहा करेंगे। ब्रह्मांड शब्द अत्यंत प्राचीन है, इस कारण इसके साथ अवश्य कई ऐसी कल्पनाएँ जुडी है जो आधुनिक विज्ञान के अनुसार निर्मूल हो सकती है, परन्तु इसका प्रधान अर्थ कि यह अंडे के समान सीमित है, इस शब्द को अत्यंत उपयुक्त बना देता है।

पृथ्वी सूर्य की प्रदक्षिणा करती है, ग्रह भी सूर्य की प्रदक्षिणा करते हैं और केतु अर्थात् पुच्छलतारे भी। इन सबसे हमारा सौर जगत बना है। परंतु तारों की परस्पर दूरियाँ इतनी अधिक है कि उन पर विचार करते समय हम पृथ्वी आदि को सूर्य से सटा हुआ मान सकते हैं। सूर्य के समान एक-खरब से भी अधिक तारे हैं, जिनको अब सम्मिलित रूप से मंदाकिनी-संस्था कहा जाता है। हमारी मंदाकिनी-संस्था बहुत बडी है, तो भी अनंत दूरी तक नहीं विस्तृत है। हम अपनी मंदाकिनी-संस्था को आकाशगंगा के रूप में देखते हैं। आकाशगंगा शब्द से हम उस प्रकाशमय मेखला को सूचित करते हैं, जो पृथ्वी-निवासियों को आकाश में दूधिया मार्ग के समान दिखायी पडती है। आकाश में जितने तारे दिखायी पडते है, वे प्राय सभी अपनी मंदाकिनी-संस्था के हैं। तारों की दूरी और स्थिति को ध्यान में रखकर यदि हम इस मंदाकिनी-संस्था की मूर्ति पैमाने के अनुसार बनायें, तो हम देखेंगे कि हमारी मंदाकिनी-संस्था कुम्हार की चाक की तरह वृत्ताकार और चिपटी परंतु बीच में फूली हुई है। यदि कल्पना-शक्ति द्वारा हम इस संस्था से बाहर निकल जायें तो हमें मोटे हिसाब से यह संस्था सर्पिलाकार नीहारिका-जैसी दिखायी पडेगी। मंदाकिनी-संस्था के प्राय मध्य धरातल में ही हमारा सूर्य है, परन्तु यह केंद्र पर नहीं है, केंद्र से किनारे की ओर प्राय दो तिहाई हटा हुआ है। मंदाकिनी-संस्था के बाहर चारों ओर बहुत दूर तक रिक्त स्थान है और तब एक दूसरे से दूर-दूर पर स्थित अन्य संस्थाएँ हैं। दूरदर्शकों से हमें अपनी मंदाकिनी-संस्था की तरह ही कई अन्य संस्थाओं का पता चला है, जो एक दूसरे से बहुत दूर-दूर पर है। इन्हें भी अब ब्रह्मांड (*अँग्रेजी में गैलैक्सी*) या द्वीप विश्व (*अँग्रेजी में आइलैंड यूनिवर्स*) कहते हैं। पता नहीं कि अनंत दूरी तक हमको ब्रह्मांड मिलते चले जायेंगे या ब्रह्मांडों की भी कोई सीमा है। कम-से-कम अभी तक किसी सीमा का पता नहीं चला है। परन्तु आरम्भ में तारों के बारे में भी

लगाया जाय तो पता चलता है कि आकाशगंगा में आस-पास दूरस्थ भागों की अपेक्षा दसगुनी घनी बस्ती है। इस जन-संख्या में स्वयं आकाशगंगा के तारों की गिनती नहीं की गयी है।

आकाशगंगा में कृत्तिका (कृत्तिका अथवा प्लाइडीज) के समान तारा-पुंज भी बहुत हैं। यहाँ यह बता देना उचित होगा कि राशि, तारा-मंडल, तारा-पुंज और तारामय नीहारिकाओं में क्या अंतर है। आकाश में जितने तारे दिखायी देते हैं, उन सब का नाम रखना तो प्राचीन ज्योतिषियों ने सुगम नहीं समझा, केवल कुछ के ही नाम वे रख पाये, जैसे रोहिणी, चित्रा, लुब्धक, वशिष्ठ, इत्यादि, या अँग्रेजी में ऐल्डिबैरन, स्पाइका, सिरियस, इत्यादि। शेष तारों को इंगित करने के लिए बैबिलन के ज्योतिषियों ने, और उनके आधार पर पीछे मिस्र तथा यूनान (ग्रीस) के ज्योतिषियों ने तारा-समूहों को विशेष नाम दिये और वे या वैसे ही नाम आज भी प्रचलित हैं, जैसे मेष, वृष, सप्तर्षि, देवयानी, आदि या लैटिन में एअरीज, टॉरस, उर्सा मेजर, कैसोपिया, आदि, या अँग्रेजी में रैम, बुल, ग्रेट बेयर, आदि। इनमें से कुछ तारा-समूहों के चमकीले तारों से *अवश्य उस वस्तु या जंतु का ध्यान आ जाता है, जिसके नाम से वे प्रसिद्ध हैं, उदाहरणतः*, वृश्चिक के चमकीले तारों से सचमुच बिच्छू का आभास होता है। परन्तु अधिकांश तारा-समूहों के नाम रखने में कोरी कल्पना से काम लिया गया है। इन तारा-समूहों को तारामंडल (अँग्रेजी में कॉन्स्टेलेशन) कहते हैं।

तारामंडलों से तारों के नाम लेने में सुविधा होती है। तारों के चित्रों में पहले तारा-मंडल के नामवाले जंतुओं आदि का चित्र भी बना रहता था। इसलिए बताया जा सकता था कि वृष (बैल) की आँख वाला तारा या वृश्चिक (बिच्छू) की पूँछ वाला तीसरा तारा, इत्यादि। *जब दूरदर्शक से दिखायी पड़नेवाले तारों का भी अध्ययन आरंभ हुआ तो केवल विशेष तारों* के समूहों को ही तारामंडल नहीं कहा गया, आकाश के विविध सीमित क्षेत्रों को तारामंडल माना गया और उस क्षेत्र में पड़नेवाले सब तारों को उस तारामंडल में समझा जाने लगा। तब तारामंडल के विविध तारों को यूनानी अक्षरों से या साधारण संख्याओं से सूचित किया जाने लगा। उदाहरणतः, ऐल्फा एराइटिज का अर्थ हुआ एअरिज (मेष) तारामंडल का ऐल्फा *अक्षर वाला तारा, इसी प्रकार* ३० एराइटिज से एअरिज (मेष) तारामंडल का ३० नम्बर वाला तारा समझा जाता है।

सूर्य के वार्षिक मार्ग में पड़नेवाले मंडलों को राशि कहते हैं। मेष, वृष, मिथुन, कर्क आदि राशियाँ हैं। इस प्रकार हम मेष तारामंडल कहने के बदले उसे मेष राशि कह सकते हैं, परन्तु राशि शब्द का एक अर्थ और है। सूर्य के मार्ग के बारहवें भाग को भी राशि कहते हैं। उदाहरणतः, कहा जा सकता है कि बृहस्पति का भोगांश (अर्थात् मेष के प्रथम बिंदु से दूरी) ३ राशि ५ अंश १६ पल ३ विपल है। यहाँ १ राशि = ३०°।

तारामंडल से छोटे कुछ विशेष समूहों को, जिनसे सूर्य या चंद्रमा की स्थिति बतायी जाती है, नक्षत्र कहते हैं। सूर्य और चन्द्रमा के मार्ग मोटे हिसाब से एक ही हैं। इस मार्ग को २७ बराबर भागों में बाँटकर प्रत्येक को एक नक्षत्र कहते हैं और अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, आदि उनका नाम रख दिया गया है। इस प्रकार नक्षत्र शब्द पाँच अर्थों में प्रयुक्त होता है—(१) कोई तारा,

(२) कुछ विशेष तारों का समूह, जैसे अश्विनी में तीन तारे माने जाते हैं, कृत्तिका में ६ तारे; (३) एक चक्र (अर्थात् ३६०°) का सत्ताईसवाँ भाग; (४) वह नक्षत्र जिसमें चन्द्रमा किसी अवसर पर स्थित हो; उदाहरणार्थ, शिशु के जन्म की तिथि और वार के साथ नक्षत्र तथा योग और करण भी बताये जाते हैं; यदि बच्चा मूल नक्षत्र में उत्पन्न हुआ है तो उसका अर्थ है कि जन्म के अवसर पर चन्द्रमा मूल नक्षत्र में था; (५) वह नक्षत्र जिसमें सूर्य स्थित हो, जैसे "तपन मृगसिरा जे सहैं, ते आर्द्रा पुरहत"—इस वाक्य में मृगसिरा से अर्थ है उतना काल जितने तक सूर्य मृगसिरा नक्षत्र में रहता है। इस पुस्तक में हम नक्षत्र शब्द का प्रयोग यथासंभव न करेंगे और करेंगे तो उसे तारा का पर्यायवाची मान कर।

तारों के सघन परन्तु छोटे समूह को तारापुंज कहते हैं। आकाश के अधिकांश तारापुंज आकाशगंगा में या उसके पास मिलते हैं। किचपिचिया (कृत्तिका, Pleiades), वृषभिका (हायाडीज, Hydes), और प्रेसिपी (Praesepe) ये सभी तारापुंज आकाशगंगा में हैं। गोलाकार तारापुंज, जैसे भीम तारापुंज (हरक्यूलीज तारापुंज) तथा उसी प्रकार के अन्य गोलाकार तारापुंज (ग्लोब्युलर स्टार क्लस्टर) अधिकतर आकाशगंगा के ही पास मिलते हैं। गैसमय नीहा-

आकाशगंगा (मंदाकिनी-संस्था) की रूपरेखा (बोक और बोक की 'मिल्की वे' से)
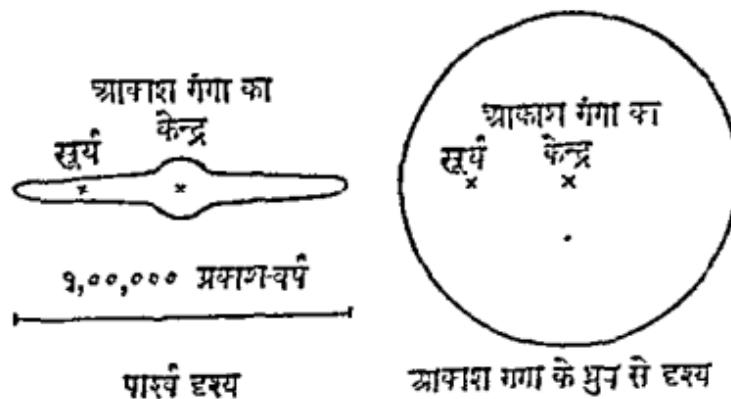
रिकाएँ भी आकाशगंगा में मिलती हैं। ओरायन की बड़ी नीहारिका आकाशगंगा में ही है, परन्तु सर्पिल नीहारिकाएँ आकाशगंगा से दूर रहती हैं। जैसा पहले बताया जा चुका है, सर्पिल नीहारिकाएँ वस्तुतः स्वतंत्र ब्रह्मांड हैं जो हमारी मंदाकिनी संस्था से पृथक् हैं।

फोटोग्राफों में आकाशगंगा—अब तो दूरदर्शक में आँख लगाकर निरीक्षण करने के बदले फोटोग्राफ खींचना ही अधिक सुगम पड़ता है, क्योंकि इसमें समय कम लगता है और प्रकाशदर्शन (एक्सपोज़र) बढ़ाकर मंदतम तारों का भी फोटोग्राफ खींचा जा सकता है। इन फोटोग्राफों से पता चलता है कि आकाशगंगा में प्रायः सर्वत्र तारों का घना समूह है। कहीं-कहीं ये तारे इतने सघन हैं कि वे पृथक्-पृथक् नहीं दिखायी पड़ते। वे श्वेत बादल-से जान पड़ते

हैं, परन्तु अधिक शक्तिशाली दूरदर्शकों से लिए गये फोटोग्राफों से पता चलता है कि ऐसे स्थान भी वस्तुत तारों के घने समूह हैं।

आकाशगंगा का रूप—पहले बताया जा चुका है कि हमारी मदाकिनी-संस्था कुम्हार की चाक की तरह वृत्ताकार और चिपटी परन्तु बीच में फूली हुई है। ऊपर के चित्र में मदाकिनी-संस्था की रूपरेखा दिखायी गयी है, परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि मदाकिनी-संस्था की कोई तीक्ष्ण सीमा नहीं है। तारों की बस्ती सर्वत्र एक समान घनी रहने के बदले धीरे धीरे बाहर की ओर क्षीण होती जाती है और यह कहना कि बस्ती यहाँ समाप्त होती है कठिन है। कुछ तारे, जो निसदेह मदाकिनी-संस्था के ही सदस्य हैं, चित्र में निरूपित सीमा के बाहर हैं। मदाकिनी-संस्था के उस रूप को जो पृथ्वी-निवासियों को दिखायी पड़ता है आकाशगंगा कहते हैं।

जहाँ तक पता चला है, मदाकिनी-संस्था अपने केंद्र की चारों ओर कुम्हार की चाक की तरह नाच भी रही है। केंद्र से सूर्य तीस-पैंतीस हजार प्रकाशवर्ष की दूरी पर है। इससे सूर्य लगभग १५० मील प्रति सेकंड के वेग से चलता है, यद्यपि आस-पास के चमकीले तारों के सापेक्ष सूर्य केवल १२ मील प्रति सेकंड चलता जान पड़ता है। कारण यह है कि ये चमकीले तारे स्वयं चलायमान हैं। यह कि आकाशगंगा अपनी धुरी पर नाच रही है, गत पचीस वर्षों में ही निश्चयात्मक रूप से जाना जा सका है। इसका प्रमाण हम कई प्रकार से पाते हैं। एक रीति तो यह है कि हम पड़ोस के तारों का अध्ययन करें।

पड़ोस के तारे—जैसा पहले बताया जा चुका है, निकटतम तारा हमसे लगभग 3×10^{13} मील की दूरी पर है अर्थात् इसकी दूरी

$$3\ 00,00,00,00\ 00,000 \text{ मील}$$

है। इसलिए पड़ोस का अर्थ सँभल कर लगाना चाहिए। मान लीजिए कि हम केवल उन तारों पर विचार करना चाहते हैं जो हमसे ढाई सौ प्रकाशवर्ष से अधिक दूर नहीं हैं। इन सब तारों की निजी गति और दृष्टिरेखा में वेग नापने पर और गणना करने पर पता चलता है कि सूर्य इन सब तारों के गुरुत्वकेंद्र के सापेक्ष लगभग १२ मील प्रति सेकंड के वेग से भीम (हरक्युलीज) तारामंडल की ओर जा रहा है। परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि सूर्य की वास्तविक गति यही है।

उन्नीसवीं शताब्दी के ज्योतिषियों को सूर्य की गति से उत्पन्न हुये परिणामों के अतिरिक्त तारों की गतियों के बारे में कुछ अधिक ज्ञान न था। परन्तु १९०४ में हालैंड के प्रसिद्ध ज्योतिषी कैप्टाइन ने अपने अनुसंधानों के बल पर घोषित किया कि तारों के दो समूह हैं जो एक दूसरे से पृथक हो रहे हैं। कैप्टाइन ने आकाश को छोटे छोटे खंडों में बाँट कर यह देखना आरम्भ किया कि प्रत्येक खंड के तारों में किस प्रकार की निजी गति है। उसे पता चला कि तारे अनियमित रूप से नहीं चलते रहते हैं। अधिकांश तारे दो दिशाओं में चलते हैं। प्रत्येक आकाशीय खंड में इस प्रकार तारा-गति का अध्ययन करने पर अंतिम निष्कर्ष यही निकलता है कि तारों की दो धाराएँ हैं। एक धारा ढाल (स्कूटम) की ओर और दूसरी मृगव्याध (ओरायन) की ओर जा रही है। इसमें ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन दोनों दिशाओं को मिलानेवाली रेखा आकाशगंगा की धरा-

तक गये हैं। उस समय तो इसका कारण न ज्ञात हो सका कि तारे क्यों इस प्रकार भागते हैं, परन्तु कुछ वर्ष बाद यह सिद्ध किया गया कि यह हमारी मदाकिनी-संस्था के अपनी धुरी पर घूमने का परिणाम है।

यह जान कर कि मदाकिनी-संस्था किस वेग से अपनी धुरी पर घूमती है और उसका विस्तार कितना है, इसकी भी गणना की जा सकती है कि इस संस्था में कुल द्रव्य कितना है। अनुमान किया गया है कि कुल द्रव्य सूर्य के द्रव्य का लगभग २ लाख गुना होगा। इसमें से लगभग आधा द्रव्य केंद्रीय भाग में है और शेष द्रव्य दूर तक विस्तृत चिपटे भाग में। मदाकिनी-संस्था अपनी धुरी पर एक चक्कर लगभग २० करोड़ वर्ष में लगाती है। पहली बार तो जान पड़ता है कि यह अति मथर गति है, पर स्मरण रखना चाहिए कि इसी घूमने से सूर्य में १५० मील प्रति सेकंड अर्थात् लगभग साढ़े पाँच लाख मील प्रति घंटे का वेग उत्पन्न हो जाता है। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि २० करोड़ वर्ष में एक बार घूमना औसत गति है। प्रत्येक तारे में निजी गति भी है। इसलिये तारो की गति का चित्र वस्तुत इतना सरल नहीं है जितना ऊपर के स्थूल वर्णन में बताया गया है। फिर यह भी ज्ञात नहीं हो सका है कि मदाकिनी संस्था क्यो घूमती रहती है। अनुसधान हो रहा है, और ऐसा जान पड़ता है कि निकट भविष्य में ही सफलता मिलेगी।

देवयानी नीहारिका—देवयानी तारामडल में एक सर्पिल नीहारिका है, जो कोरी आँख से देखी जा सकती है। इसका विषुवाश ० घंटा ४० मिनट है और क्रांति +४१°। बरसात के बाद और जाड़े में यह स्वच्छ अँधेरी रातो में सुगमता से दिखायी पड़ती है। आकाशगगा से यह लगभग २०° पर है। इस नीहारिका की मेसिये सख्या ३१ है। कोरी आँख से इसमें कोई ब्योरे नही दिखायी पडते, परन्तु दूरदर्शक में यह नीहारिका बहुत ही सुन्दर जान पड़ती है। बड़े दूरदर्शकों से लिए गये फोटोग्राफो से इसकी रचना स्पष्ट हो जाती है। बीच में प्रकाशमय केंद्र है और उससे सर्पिलाकार भुजाएँ निकली है, परन्तु तिरछा दिखायी पड़ने के कारण भुजाएँ उतनी स्पष्ट और पृथक् नही दिखायी पड़ती जितनी कई अन्य सर्पिल नीहारिकाओ में। बड़े दूरदर्शको द्वारा जाँच से पता लगता है कि केंद्र और भुजाएँ सभी अग असख्य तारो के समूह है।

पृष्ठभूमि में नन्ही-नन्ही सर्पिल नीहारिकाएँ और अग्रभूमि में चमकीले तारे बहुत दिखायी पड़ते हैं, जिससे अनुमान किया जाता है कि देवयानी नीहारिका की दिशा में धूलि आदि विशेष-अधिक नही है जो प्रकाश का शोषण कर ले। इस नीहारिका के आस-पास दिखायी पड़ने वाली नन्ही-नन्ही नीहारिकाएँ अत्यन्त दूर होने के कारण ही नन्ही जान पड़ती है। इनमें से कोई भी नीहारिका ऐसी नहीं है जो एक करोड़ प्रकाश-वर्ष से कम दूरी पर हो। जितने तारे देवयानी नीहारिका के आस-पास दिखायी पड़ते है, वे हमारी मदाकिनी-संस्था के है और देवयानी नीहारिका की तुलना में हमारे बहुत पास है। देवयानी नीहारिका की दो साथिनियाँ भी है, जो अपेक्षाकृत छोटी है, परन्तु पृष्ठभूमि की नीहारिकाओ से बहुत बड़ी दिखायी पड़ती है। देवयानी नीहारिका की ही दूरी पर रहने के कारण अवश्य वे देवयानी नीहारिका के पास होगी। इसी से वे देवयानी नीहारिका की साथिनियाँ कहलाती है।

सेफीइड तारों की चमक घटने-बढ़ने के चक्रकाल से पता चलता है कि देवयानी नीहारिका हमसे लगभग साढ़े सात लाख प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है। परन्तु संभव है कि इस नीहारिका और हमारे बीच में कुछ धूलि हो जिसके कारण नीहारिका का प्रकाश धूमिल हो गया है। इसलिए इस दूरी में ५० हजार प्रकाश-वर्ष की त्रुटि हो सकती है।

नाप—देवयानी नीहारिका कितनी बड़ी है, इसका उत्तर अब हम दे सकते हैं, क्योंकि दूरी ज्ञात होने से कोणीय नाप को हम मीलों में परिवर्तित कर सकते हैं। बड़े दूरदर्शकों से लिए गये अच्छे फोटोग्राफों में यह नीहारिका लगभग १६० कला लंबी और लगभग ४० कला चौड़ी है। इस प्रसंग में स्मरण रखना चाहिए कि पूर्ण चन्द्रमा का व्यास लगभग ३२ कला है। इस प्रकार, यदि नीहारिका का संपूर्ण विस्तार हमें कोरी आँख से दिखाई पड़ता तो पूर्ण चन्द्रमा से उसका क्षेत्रफल हमको सात गुना अधिक प्रतीत होता।

गणना करने से पता चलता है कि पूर्वोक्त नाप के अनुसार देवयानी नीहारिका की लम्बाई लगभग ३५,००० प्रकाश वर्ष होगी और चौड़ाई लगभग ८,७०० प्रकाश वर्ष। नीहारिका अधिक चिपटी हमें इसीलिए दिखायी पड़ती है कि हम उसे तिरछी दिशा से देख रहे हैं। यदि हम उसकी धरातल से समकोण बनाती हुई दिशा से उसे देख सकते तो हमको वह वृत्ताकार दिखायी पड़ती। उसे वृत्ताकार मान कर गणना करने से यह परिणाम निकलता है कि हमारी दृष्टिरेखा नीहारिका के धरातल से कुल १५ अंश का कोण बनाती है। एक प्रकार हम प्रायः उसके धरातल में हैं।

आँख से, चाहे हम बड़े दूरदर्शक की सहायता भी क्यों न लें, इस नीहारिका की सर्पिल भुजाएँ हमें नहीं दिखायी पड़तीं। केवल फोटोग्राफों से ही उनका पता चलता है। दूरदर्शक द्वारा यह नीहारिका ऐसी दिखायी पड़ती है जैसे किसी तारे को हम कुहेसा में डूबा हुआ देखें। इसका अर्थ यह है कि नीहारिका के केंद्र से दूर पर स्थित भाग बहुत मंद प्रकाश के हैं। जब हम बड़े दूरदर्शक से लिए गये अच्छे प्लेट के घनत्व का अनुमान केवल आँख से न करके सूक्ष्म घनत्वमापक से नापते हैं तो पता चलता है कि नीहारिका वस्तुतः उससे भी बहुत अधिक विस्तृत है, जितनी यह फोटोग्राफ में दिखायी देती है। सूक्ष्म-घनत्वमापक यंत्र में प्रकाश को सिलीनियम-सेल की सहायता से विद्युत में परिवर्तित कर लेते हैं और उसे अत्यन्त सूक्ष्म विद्युतमापक से नापते हैं। इस प्रकार प्लेट का घनत्व बड़ी सूक्ष्मता से नप जाता है। इससे नापने पर पता चलता है कि क्षेत्रफल में नीहारिका ७० पूर्ण चंद्रों के क्षेत्रफल से कम नहीं है। वस्तुतः यह बहुत बड़ी नीहारिका है। साथ ही एक बात और ध्यान देने योग्य है। सूक्ष्म-घनत्वमापक से नापने पर पता चलता है कि नीहारिका प्रायः गोल है। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि नीहारिका का घना भाग पहियें की तरह वृत्ताकार है जिसका केंद्र बहुत चमकीला है, और यह पहिया सब ओर से मंद प्रकाश युक्त आवरण से अवगुंठित है। अभी पता नहीं है कि यह अवगुंठन मंद प्रकाश के असंख्य तारों से निर्मित है अथवा गैसमय है। निकट भविष्य में इतने बड़े दूरदर्शक या इतने तेज प्लेट के बनने की आशा नहीं है कि हम अवगुंठन के भेद को जानने में सफल हो सकें, परन्तु अपनी मंदाकिनी-संस्था की

संरचना को ध्यान में रखते हुए यह अधिक संभव जान पड़ता है कि देवयानी नीहारिका का अवगुंठन तारामय ही हो।

देवयानी नीहारिका की एक भगिनी मेसियें ३२ है। माउंट विल्सन के १०० इंचवाले दूरदर्शक से फोटोग्राफ लेने पर इसकी तारामय संरचना स्पष्ट हो जाती है। इसकी दूरी भी उतनी ही है जितनी देवयानी नीहारिका की। देवयानी नीहारिका की दूसरी भगिनी एन० जी० सी० २०५ है। देवयानी नीहारिका से यह छ श्रेणी मंद है, परन्तु उतनी ही दूरी पर रहने के कारण अवश्य ही उससे संबन्धित है। इसके अस्तित्व से हमें यह सूचना मिलती है कि सभी तारामय नीहारिकाएँ मंदाकिनी-संस्था या देवयानी नीहारिका की तरह बड़ी नहीं होतीं। परंतु छोटी नीहारिका की भी वास्तविक चमक हमारे सूर्य से ७० लाख गुनी अधिक है, देवयानी नीहारिका की वास्तविक चमक इससे भी सवा दो सौ गुनी अधिक है।

ऊपर बताया गया है कि देवयानी नीहारिका का अवगुंठन दूर तक विस्तृत है। वस्तुतः उस नीहारिका की पूर्वोक्त दोनों साथिनियाँ भी इसी अवगुंठन में लिपटी हुई हैं। इस प्रकार इन तीनों को भिन्न नीहारिका समझने के बदले उन्हें मिला कर एक ही नीहारिका समझना अधिक उत्तम होगा।

मेसियें ३३—मेसियें ३३ देवयानी नीहारिका से लगभग १४ अंश की दूरी पर है। पृथ्वी से इस नीहारिका की दूरी लगभग देवयानी नीहारिका के समान ही है और बहुत संभव है दोनों में कोई भौतिक संबंध भी हो। इसलिए कभी-कभी इसे भी देवयानी नीहारिका की साथिनी समझा जाता है। फोटोग्राफों से पता चलता है कि मेसियें ३३ भी सर्पिल नीहारिका है। हमारी दृष्टिरेखा इसके धरातल से प्रायः ३० अंश का कोण बनाती है। इसलिए इसकी सर्पिल भुजाएँ हमें अधिक स्पष्ट दिखायी पड़ती हैं। यह काफी बड़ी नीहारिका है।

देवयानी नीहारिका की तौल—हम देवयानी नीहारिका की तौल का भी अनुमान अच्छी तरह कर सकते हैं। गणना किया गया है कि उसका द्रव्यमान एक अरब सूर्यों से कम न होगा और दो खरब सूर्यों से अधिक न होगा। इससे अधिक सूक्ष्म गणना करना इसलिए असंभव है कि कई बातें, जैसे चमक, दूरी आदि, ठीक-ठीक ज्ञात नहीं हैं।

अब हम इसका भी अनुमान कर सकते हैं कि इस नीहारिका में कितने तारे होंगे। यदि सभी तारे हमारे सूर्य के समान हों तो प्रत्यक्ष है कि उन की संख्या एक अरब और दो खरब के बीच होगी। तौल का अनुमान करने के लिए हम देखते हैं कि यदि नीहारिका हमारे सूर्य की दूरी पर लायी जा सकती तो यह हमको सूर्य से लगभग डेढ़ अरब गुनी चमकीली दिखायी पड़ती। परंतु इस नीहारिका में कई तारे ऐसे हैं जिन्हें ज्योतिषी दैत्य (जायंट) और अति दैत्य (सुपर जायंट) वर्ग में रखते हैं। यदि कल्पना की जाय कि सूर्य और इन तारों से तौल में बराबर-बराबर द्रव्य

हम लेते हैं तो इन बराबर द्रव्यों की चमक एक-सी न होगी। दैत्य और अति दैत्य तारों के द्रव्य से अधिक चमक निकलेगी। परंतु अधिक संभव है कि देवयानी नीहारिका के अधिकांश तारे हमारे सूर्य से अधिक भारी और कम चमकीले हों। ये वैसे तारे होंगे जिन्हें ज्योतिषी वामन (ड्वार्फ) तारे कहते हैं। इस प्रकार के तर्कों से यही परिणाम निकलता है कि यद्यपि देवयानी नीहारिका की वास्तविक चमक हमारे सूर्य से डेढ़ अरब गुनी अधिक है, तो भी अधिकांश तारों के वामन होने के कारण उसकी तौल सूर्य की तौल की खरब-दो खरब गुनी हो सकती है।

इस प्रकार हमने सात नीहारिकाओं की सरसरी जाँच कर ली है अपनी मंदाकिनी-संस्था, दोनों मैगिलन मेघ, देवयानी नीहारिका, उसकी दो साथिनियाँ, और एक पड़ोसिन (मेसियर ३३)। आगामी अध्याय में हम नीहारिकाओं को क्रमबद्ध वर्गों में विभाजित करने की चेष्टा करेंगे।

तृतीय अध्याय

नीहारिकाओं की जातियाँ

नीहारिकाओं का वर्गीकरण—नीहारिकाओं का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जा सकता है, परंतु उनकी दो मुख्य जातियाँ हैं : एक तो गाग (अँग्रेजी में गैलैक्टिक) और दूसरा अगाग (एक्स्ट्रा गैलैक्टिक)। अगाग नीहारिकाओं को अँग्रेजी में नॉनगैलैक्टिक या ऐनागैलैक्टिक भी कहते हैं। इन्हीं को ब्रह्माड (अग्रेजी में गैलैक्सी) भी कहते हैं।

गाग नीहारिकाओं का नाम ऐसा इसलिए पडा है कि ये हमारी आकाशगगा के धरातल में या इस धरातल के पास रहती हैं; अगाग नीहारिकाएँ इस धरातल से दूर रहती हैं। यद्यपि गाग और अगाग नाम आकाशगगा के पास रहने या न रहने से ही पडे हैं, तो भी नीहारिकाओं की इन दो जातियों में कई बातों में महत्वपूर्ण अतर है, जो आकाशगगा के पास रहने या न रहने पर निर्भर नही है। उदाहरणत, अगाग नीहारिकाएँ बहुत दूर हैं, उनकी वास्तविक चमक अधिक है, लबाई-चौडाई में वे अति विशाल होती हैं और उनकी सरचना सर्पिल या गोलाभ होती है। गाग नीहारिकाएँ अपेक्षाकृत निकट और छोटी तथा असर्पिल होती हैं, वस्तुत वे हमारी मदाकिनी-सस्था के ही अतर्गत हैं।

गाग नीहारिकाएँ—गाग नीहारिकाओं को मोटे हिसाब से दो वर्गों में बाँटा जा सकता है (१) प्रसृत (डिफ्यूज) और (२) ग्रहीय (प्लैनिटैरी)। प्रसृत नीहारिकाओं की रूप-रेखाएँ तीक्ष्ण नही होती और न वे किसी विशेष आकृति की होती हैं। ऐसी नीहारिकाएँ बहुत कुछ हल्के, बिखरे बादल की तरह होती हैं। प्रसृत नीहारिकाओं को दो उपवर्गों में बाँटा जा सकता है, प्रकाशमय और अधकारमय। परतु इन दोनों मेल की नीहारिकाओं में कोई मौलिक अतर नही जान पडता। अधिकतर वे इस प्रकार एक दूसरे में मिली रहती हैं कि उनको एक दूसरे से पृथक् नही माना जा सकता। वे एक ही नीहारिका की विविध टुकडियाँ हैं, जो कही प्रकाशमय कही अधकारमय, रहती हैं। प्रकाशमय नीहारिकाओं को हम बहुधा चमकीली नीहारिकाएँ कहेंगे और अधकारमय नीहारिकाओं को काली नीहारिकाएँ।

ग्रहीय नीहारिकाओं का नाम इसलिए पडा है कि वे वृत्ताकार या प्राय वृत्ताकार दिखाई पडती हैं, जिस प्रकार ग्रह होते हैं। अवश्य ही वे उतनी प्रदीप्त नही होती, परतु आकृति प्राय वृत्ताकार होती है और उनकी रूपरेखा तीक्ष्ण होती है। ऐसी नीहारिकाओं में एक विशेषता यह भी होती है कि उनके केंद्र में कोई चमकीला तारा रहता है।

प्रसृत नीहारिकाएँ—आधुनिक फोटोग्राफो तथा अन्य खोजो से यह निश्चित है कि तारो के बीच का स्थान पूर्णतया रिक्त नही है। उसमें अणु और कण बिखरे पडे हैं, अर्थात् अतरिक्ष

धूलि है। इस धूलि का घनत्व भी सर्वत्र एक-सा नही है। घनत्व कही-कही तो प्राय शून्य के बराबर है, और कही-कही इतना है कि पीछे के तारे बहुत-कुछ छिप जाते है। हमारी मदाकिनी-सस्था में इस प्रकार का पदार्थ बहुत है, कही-कही अधकारमय पदार्थ चमकीले पदार्थ के सामने आ गया है और तब वह अधकारमय पदार्थ हमको अधकारमय नीहारिका के रूप में दिखाई पडता है। घोडमुँही नीहारिका (दि हॉर्स हेड नेब्युला) इसका एक सुन्दर उदाहरण है। फोटोग्राफ देखते ही पता चलता है कि प्रकाशमय नीहारिका के सम्मुख काले बादल के समान जुटे पदार्थ से इस नीहारिका की उत्पत्ति हुई है।

अन्य स्थानो में धूलि चमकीले तारो के पास है, जिसके कारण वह चमक उठती है। उस में चमक दो तरह से उत्पन्न हो सकती है। या तो अत्यत तप्त तारो की अदृश्य पराकासनी तरगो से क्षुब्ध होने पर उसमें निजी प्रकाश उत्पन्न होता है, या अपेक्षाकृत कम तप्त तारो का प्रकाश उनपर पड कर बिखर जाता है और तब नीहारिका का पदार्थ उसी प्रकार प्रकाश-मय हो जाता है, जिस प्रकार सडक के विद्युत्-दीपो से पास-पडोस का कुहेसा। नीहारिकाओ के वर्णपटो से स्पष्ट पता चल जाता है कि प्रकाश बिखर कर आ रहा है या नीहारिकाओ की निजी उपज है। पहले इन बातो को वैज्ञानिक लोग भी ठीक-ठीक नही समझ पाये थे। थोडी-सी ऐसी प्रदीप्त नीहारिकाओ की जाँच से जिनमें निजी प्रकाश उत्पन्न हुआ था, उन्होने यह समझ रखा कि सभी प्रकाशमय नीहारिकाएँ अत्यत तप्त गैस है। फिर उन्हें अचरज होता था कि इतनी प्रसरित अवस्था में होते हुए भी कि उनके अणु और कण एक दूसरे से दूर-दूर पर होगे, वे कैसे तप्त रह पाती है। १८६४-६८ में विलियम हगिन्स (W Huggins) ने अपने वर्णपटनिरीक्षक (स्पेक्ट्रॉस्कोप) से नीहारिकाओ की परीक्षा की। उसने देखा कि कई नीहा-रिकाओ के वर्णपटो में इने गिने रगो की किरणो में ही सारी दीप्त सीमित है। ऐसा वर्णपट साधारणत तब उत्पन्न होता है जब कोई गैस अति तप्त होकर स्वय प्रदीप्त हो जाती है। हगिन्स के बाद औरो ने भी नीहारिकाओ के वर्णपटो की जाँच की और उनको भी यही परिणाम मिला। इसीलिए लोगो को विश्वास हो गया कि नीहारिकाओ में अति तप्त गैस रहती है। परतु १९१२ में लॉवेल वेधशाला के वी० एम० स्लाइफर (V. M Slipher) ने घोषित किया कि कृत्तिकाओ को घेर रखनेवाली नीहारिका के वर्णपट में चमकीली पृष्ठ-भूमि है और उनमें काली धारियाँ है, और यह वर्णपट ठीक वैसा ही है, जैसा वातावरण में लिपटे तारो का होता है। पीछे इसी प्रकार के वर्णपट कई अन्य नीहारिकाओ से भी मिले। तब सिद्ध होगया कि कुछ नीहारिकाएँ केवल पृष्ठभूमि के तारो के प्रकाश से ही हमें दिखाई पडती है। यह सिद्धात कि शेष नीहारिकाएँ तप्त रहने के बदले पडोस के तारो से आये अदृश्य पराकासनी तरगो से क्षुब्ध होकर चमकती है, आई० एस० बोवेन (I.S Bowen) का था और १९२७ में प्रकाशित हुआ। यह सिद्धात अब पूर्णतया सतोषजनक समझा जाता है। इसके पहले अमरीका के हबल (Hubble) ने वेधो से सिद्ध किया था कि जब पडोस के तारे का तापक्रम २०,००० डिगरी सेंटीग्रेड से अधिक रहता है, तब नीहारिका से चमकीली रेखाओवाला वर्णपट मिलता है और जब तारा उससे कम तापक्रम का रहता है तब नीहारिका से काली रेखाओवाला वर्णपट

मिलता है। उसने यह भी देखा था कि नीहारिका का चमकीला भाग कितना विस्तृत है, यह इस पर निर्भर है कि केंद्रीय तारा कितना चमकीला है। तारा जितना ही चमकीला रहता था नीहारिका उतनी ही अधिक दूर तक विस्तृत मिलती थी। इन दोनों बातों से इसका संकेत होता था कि नीहारिका स्वयं अतितप्त होने के कारण नहीं चमकतीं। उसे किसी-न-किसी प्रकार पास के तारे से सहायता मिलती है। थॉवेन का सिद्धांत इन्हीं बातों पर आश्रित है।

नीहारिकाओं की गति—जिन नीहारिकाओं के वर्णपटों में चमकीली रेखाएँ होती हैं दृष्टिरेखा में उनका वेग निकाला जा सकता है। कारण यह है कि यद्यपि प्रकाश मंद रहता है तो भी थोडी-सी चटक रेखाओं में एकत्रित रहने के कारण उन रेखाओं का फोटोग्राफ खिंच जाता है। लिक वेधशाला के ज्योतिषियों ने कई नीहारिकाओं के दृष्टिरेखिक वेग नापे हैं। परिणाम यह निकला है कि अधिकांश नीहारिकाएँ अपेक्षाकृत मंद गति से चलती हैं। बहुतों का वेग छः-सात मील प्रति घंटा है। संपूर्ण वेग ज्ञात करने के लिए दृष्टिरेखा से समकोण बनानेवाली दिशा में भी वेग ज्ञात होना चाहिए, परंतु यह वेग नहीं नापा जा सका है, क्योंकि नीहारिकाओं में कोई तीक्ष्ण बिन्दु या रेखा ऐसी नहीं रहती जिस पर ध्यान देने से नीहारिका का वेग सूक्ष्मता से नापा जा सके। फिर, नीहारिकाओं के अच्छे फोटोग्राफ थोडे ही दिनों से संभव हो सके हैं। अधिक समय बीतने पर ही, दुबारा फोटोग्राफ लेकर, नीहारिकाओं की निजी गति जानी जा सकेगी। स्मरण रहे कि दृष्टिरेखा में वेग डॉपलर सिद्धांत से, वर्णपट की जाँच से नापा जाता है और इसके लिए केवल एक वर्णपट-फोटोग्राफ काफी होता है। दृष्टिरेखा से समकोणवाली दिशा का वेग दो फोटोग्राफों की तुलना से जाना जाता है, तुलना से देखा जाता है कि इन दोनों फोटोग्राफों में नीहारिका अपनी पहली स्थिति से कितनी दूर हट गई।

घटने-बढ़नेवाली नीहारिकाएँ—थोडी-सी ऐसी भी नीहारिकाएँ हैं, जिनका प्रकाश घटता-बढ़ता जान पड़ता है। उनके केंद्रीय तारों का प्रकाश भी घटता-बढ़ता है। पहले तो ऐसा समझा गया कि तारों के प्रकाश के न्यूनाधिक होने के कारण ही नीहारिकाओं का प्रकाश घटता-बढ़ता होगा। परन्तु खोज से पता चला कि दोनों के प्रकाश की घटती-बढ़ती में कोई संबंध नहीं है। *इस विषय में अभी और खोज की आवश्यकता है; परन्तु ऐसी नीहारिकाएँ आकाश* में कम हैं। एक दरजन से कम ही ऐसी नीहारिकाएँ देखी गयी हैं। अनुमान यह किया जाता है कि इन नीहारिकाओं की धूलि आदि निश्चल अवस्था में नहीं है, जैसे बादलों के चलते रहने से कभी बहुत अँधेरा कभी बहुत उँजाला पृथ्वी पर हुआ करता है, उसी प्रकार इन नीहारिकाओं में कभी घना, कभी पतला भाग के हमारे सामने आ जाने से प्रकाश घटता-बढ़ता-सा जान पडता है।

काली नीहारिकाएँ—आकाशगंगा में कई स्थान ऐसे हैं जहाँ कोई तारा नहीं दिखाई पडता। कोयले की बोरी (कोल सैक) की चर्चा पहले की जा चुकी है। इसी प्रकार के अन्य स्थान भी हैं, यद्यपि वे इतने बड़े नहीं हैं। बड़े हरशेल ने इन में से कुछ को देखा था। उसकी धारणा थी कि ये आकाश के छिद्र हैं जिनसे अनंत दूर तक का शून्य दिखाई पडता है। अमरीका के बारनार्ड ने सैकडों ऐसे रिक्त स्थानों की सूची बनाई। उसके अध्ययन ने उसे अन्त में इस सिद्धांत पर

पहुँचाया कि तारों से जगमगाते आकाश में ऐसे स्थान छिद्र नहीं हैं, वे काले बादल हैं जो तारों को ढके हुए हैं। इन्हें हम अंधकारमय या काली नीहारिकाएँ कहते हैं। ऐसी नीहारिकाएँ छोटी भी हैं और बड़ी भी। आकाशगंगा में हंस (सिगनस) से नराश्व (सेंटॉरस) तक जो दो शाखाएँ हो गयी हैं वे भी बीच में काली नीहारिका के पड़ जाने से ही बन गयी हैं। कुछ दूरस्थ सर्पिल नीहारिकाओं में भी काली मेखला सर्पिल नीहारिका को घेरे हुये दिखायी पड़ती है। इनसे तुलना करने पर हमारी आकाशगंगा में भी काली नीहारिका का बीच में पड़ जाना कोई विचित्र बात नहीं जान पड़ती।

काली नीहारिकाएँ अवश्य परमाणु, अणु, धूलि, कण, आदि से बनी होंगी, परन्तु यह पदार्थ आया कहाँ से? पहले तो यह सिद्धांत उपस्थित किया गया कि यह पदार्थ तारों में से ही प्रकाशचाप के कारण निकला होगा। यह प्रसिद्ध बात है कि छोटे कणों पर प्रकाश का दबाव पड़ता है। इसी कारण पुच्छल तारों की पूँछ सदा सूर्य से उलटी दिशा में रहती है। नूतन तारों में, अर्थात् उन तारों में जो पहले इतने मंद रहते हैं कि उन पर कोई विशेष ध्यान नहीं देता, परन्तु अचानक विस्फोट के कारण वे अत्यन्त चमकीले हो जाते हैं, अवश्य पदार्थ निकलता देखा गया है। परन्तु सूर्य में विस्फोट से निकला पदार्थ फिर सूर्य में ही गिरता हुआ दिखाई पड़ता है। इसलिए यदि कुछ पदार्थ दूर चला जाता होगा तो वह कम ही मात्रा में। हाल के अनुसंधानों से पता चलता है कि हमारी मंदाकिनी-संस्था की सारी काली नीहारिकाओं का कुल द्रव्यमान समस्त तारों के द्रव्यमान के लगभग बराबर ही होगा। इसलिए यह विशेष संभव नहीं जान पड़ता कि इतना सारा पदार्थ तारों में से ही निकला हो। यह भी संभव नहीं जान पड़ता कि यह अंधकारमय पदार्थ सृष्टि के आरंभ से ही वर्तमान था, परन्तु इस प्रश्न पर कि पदार्थ कहाँ से आया, विचार करने के पहले इस पर विचार करना अधिक उचित होगा कि देख लिया जाय कि यह पदार्थ क्या है, किस रूप में है और कितना है।

यह देखकर कि सूर्य के आस-पास के तारे किस प्रकार चल रहे हैं, गतिविज्ञान के आधार पर इसकी गणना की जा सकती है कि सूर्य के पड़ोस में द्रव्य का घनत्व क्या होगा। ओर्ट (Oort) के अनुसंधानों से पता चला है कि सूर्य के पड़ोस में धूलि और गैस का घनत्व लगभग ३×१०^{-२४} ग्राम प्रति घन सेंटीमीटर होगा। यह घनत्व बहुत ही कम है। सरसों के बराबर पदार्थ को महीन चूर्ण करके एक मील व्यास के गोले में बिखेर देने से जो घनत्व प्राप्त होगा, लगभग उतना ही घनत्व तारों के बीच के अंतरिक्ष में है। केवल अरब खरब मील की गहराई के कारण ही उसका कुछ प्रभाव दिखाई पड़ता है, लाख दो लाख मील या करोड़ दस करोड़ मील की गहराई तक इस धूलि का प्रभाव उपेक्षणीय ही होगा।

अब प्रश्न यह उठता है कि आकाश में बिखरे हुए कण कितने बड़े होंगे, इसका पता तारों के रंग से लगता है। धूलि और गैस में से आने से तारों का रंग कुछ ललछौंह हो जाता है, ठीक उसी प्रकार जैसे प्रातः या सायंकाल का सूर्य हमें लाल दिखाई पड़ता है। तारों के रंगों में कितनी लाली धूलि आदि के कारण उत्पन्न होती है, इसे जानने से हम धूलि के कणों का औसत व्यास जान सकते हैं। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि तारा स्वयं ललछौंह हो सकता है।

तापक्रम जितना ही कम रहता है, तारा उतना ही अधिक लाल होता है। तापक्रम बढ़ने पर तारा कुछ पीला, फिर सफेद और अधिक तप्त रहने पर वह हमें नीला दिखाई पड़ता है। इसलिए लाल तारा दिखाई देने पर यह निश्चय करना अत्यन्त आवश्यक होता है कि तारा ठंढा होने के कारण लाल है या उसका प्रकाश अधिक धूलि में से होकर आया है, इसलिए लाल है। सौभाग्यवश हमें यहाँ भी वर्णपट से सहायता मिलती है। निकटस्थ तारों के अध्ययन से पता चला है कि वर्णपट तारे के तापक्रम पर निर्भर है और रंग भी उसी तापक्रम पर निर्भर है। इसलिए वर्णपट की जाँच से हम तारे के तापक्रम का अनुमान कर सकते हैं। अब हम देखते हैं कि दूरस्थ तारों में बहुत से ऐसे हैं कि उनका वर्णपट बताता है कि वे अति तप्त हैं; परन्तु निरीक्षण बताता है कि वे ललछौंह हैं। इससे यह परिणाम निकाला जाता है कि इन तारों का प्रकाश महीन धूलि से होकर आया है।

प्रयोगों से और सिद्धान्त से यह निश्चित है कि इंच के हजारवें भाग से बड़े कणों से प्रकाश लाल नहीं होता; केवल रुक जाता है। इसलिए आकाश में बिखरे पदार्थ के कण अवश्य इंच के हजारवें भाग से छोटे होंगे। परन्तु यदि कण बहुत छोटे हों तो भी हमारा काम न चलेगा। उदाहरणतः, यदि सब कण मुक्त एलेक्ट्रन हों तो वे रंग नहीं बदल सकते। परमाणु और अणु के बराबर पदार्थ खूब रंग बदलते हैं और नाप में उनका व्यास लगभग इंच के दस करोड़वें भाग के बराबर होता है। सूर्य में लाली और आकाश की नीलिमा ऐसे ही कणों से उत्पन्न होती है। जब प्रकाश किसी अणु या परमाणु से टकराता है तो नीला प्रकाश बिखर कर इधर-उधर हो जाता है और लाल प्रकाश आगे बढ़ता है। इसी बिखरे प्रकाश से आकाश में सुन्दर नीला रंग उत्पन्न होता है, और इन्हीं अणुओं और परमाणुओं के कारण सूर्य हमें सदा ही कुछ कम सफेद, और संध्या तथा प्रातःकाल स्पष्टतया लाल दिखाई पड़ता है। स्मरण रहे कि संध्या तथा प्रातःकाल सूर्य के प्रकाश को हमारे वायुमंडल में बहुत अधिक दूर तक चलना पड़ता है (चित्र देखें)।
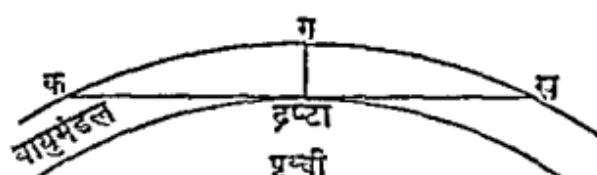
प्रातःकाल सूर्य लाल क्यों दिखायी पड़ता है।

प्रातःकाल और सायंकाल प्रकाश को वायुमंडल में क से या ख से द्रष्टा तक आना पड़ता है, मध्याह्न में केवल ग से आना पड़ता है, जो अपेक्षाकृत बहुत निकट है। वायुमंडल में बहुत दूर तक चलने से प्रकाश लाल हो जाता है।

परन्तु तारों के बीच के अंतरिक्ष में धूलि-कण परमाणुओं और अणुओं से बड़े होंगे। क्योंकि यदि सारे आकाश में अणु और परमाणु ही रहते तो तारों में बहुत अधिक लालिमा उत्पन्न होती। अणु और परमाणु लाल रंग की अपेक्षा पराकासनी रंग को १६ गुना अधिक बिखेरते हैं; परन्तु तारों के प्रकाश की जाँच से पता चलता है कि अंतरतारकीय धूलि से पराकासनी प्रकाश लाल की अपेक्षा दुगना कम होता है। इसलिए धूलि-कण अवश्य ही अणु और परमाणु से मोटे होंगे। इन सब बातों का निष्कर्ष यह है कि तारों के बीच की धूलि के व्यास का मध्यमान (औसत) इंच के हजारवें भाग से लेकर इंच के लाखवें भाग के बीच होगा। इस प्रकार धूलि के अधिकांश कण इतने छोटे होंगे कि वे हमारे शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शकों में भी नहीं दिखाई पड़ेंगे।

अब प्रश्न यह उठता है कि ये धूलिकण किस पदार्थ के है। क्या इन कणो में लोहा आदि धातु है या पृथ्वी की धूलि की तरह ये बालू के कण है या ये केवल हिम कण है। प्रत्यक्ष है कि हम अतर्तारकीय धूलि की बानगी बटोर कर प्रयोगशाला में उस का निरीक्षण नही कर पायेगे; परतु भौतिक विज्ञान, गणित और तर्क से अतर्तारकीय धूलि की सरचना का भी अनुमान किया जा सका है।

धातुओ पर जब प्रकाश पडता है तब प्रकाश के अधिक भाग को धातु सोख लेती है और इससे धातु गरम हो जाती है, परतु अधातु पर, जैसे बालू आदि पर, जब प्रकाश पडता है, तब उस का अधिक भाग बिखर जाता है। भौतिक विज्ञानवाले इसका कारण भी अब जान गये है कि ऐसा क्यो होता है, परतु उस कारण को यहाँ उपस्थित करने की आवश्यकता नही है। परिणाम ही यहाँ पर्याप्त होगा। अब सोचने की बात है कि बिखरने के बदले यदि प्रकाश का अधिकतर शोषण होता तो तारो के बीच का आकाश हमें काला लगता। प्रकाशविद्युत यत्र से तारो के बीच के आकाश को आकाशगगा में नापने पर और पृष्ठभूमि के तारो से आये प्रकाश को घटाने पर काफी प्रकाश बच रहता है, जो अवश्य ही अतर्तारकीय धूलि से बिखर कर आता होगा। इस प्रकार के खोजो से अतिम परिणाम यह निकलता है कि अतर्तारकीय धूलि अधिकतर अधातुओ से बनी होगी। यह धूलि बालू (सिलिका) या जल के परमाणुओ की हो सकती है।

अंतर्तारकीय गैस—तारो के बीच के रिक्त स्थान में धूलि-कणो के अतिरिक्त गैस के अणु अवश्य होगे, परतु यह कोरा अनुमान ही नही है। इसका प्रमाण भी मिला है। गैस के अणु तारो के प्रकाश से विशेष रगो को सोख लेते है और इस प्रकार उनके कारण तारो के वर्णपटो में काली धारियाँ बन जाती है। परतु ऐसी काली धारियाँ तारे के निजी प्रकाश में भी रह सकती है। इसलिए यह मान लेने के पहले कि काली रेखाएँ अतर्तारकीय धूलि से बनी है, हमें प्रमाण मिलना चाहिए कि ये काली रेखाएँ तारे पर ही नही बनी है। इसका प्रमाण उन युग्म तारो से मिला है, जो एक दूसरे के चारो ओर नाचते रहते है, या यो कहिये कि दोनो अपने सम्मिलित गुरुत्वकेंद्र के चारो ओर नाचते रहते है। इसलिए इन तारो में से जब एक हमारी ओर आता रहता है तब दूसरा हम से दूर जाता रहता है। परिणाम यह होता है कि डॉपलर नियम के अनुसार वर्णपट मे एक तारे के आये प्रकाश की काली रेखाएँ कुछ दाहिने हट जाती है और दूसरे तारे के प्रकाश की रेखाएँ कुछ बाएँ हट जाती है, जिससे इन तारो के प्रकाश से बनी रेखाएँ दोहरी हो जाती है। परतु अतर्तारकीय गैसो से उत्पन्न काली रेखाएँ एकहरी और इसलिए तीक्ष्ण रह जाती है। पहली बार १९०४ में हार्टमान (Hartmann) ने देखा कि डेल्टा ओरायनिस नामक युग्म तारे के वर्णपट में अन्य रेखाएँ तो चौडी या दोहरी हो जाती है, परतु कैल्सियम की रेखाएँ तीक्ष्ण और स्थिर रहती है। इसलिए स्पष्ट है कि अतर्तारकीय धूलि में अवश्य कैल्सियम के परमाणु है। पीछे अधिक शक्तिशाली यत्रो से इस मामले की जाँच करने पर कैल्सियम के अतिरिक्त पोटैसियम, सोडियम, टाइटेनियम और लोहा के अस्तित्व का भी पता चला। इन मौलिक धातु-तत्वो के अतिरिक्त ऑक्सिजन और कारबन, हाइड्रोजन तथा नाइट्रोजन के

विशेष यौगिकों का पता लगा है। अनुमान किया जाता है कि तत्वों में से हाइड्रोजन ही सबसे अधिक मात्रा में विद्यमान होगा। कुछ वैज्ञानिकों का अनुमान है कि अन्तर्तारकीय अंतरिक्ष में प्राय वे सभी तत्त्व होंगे जो पृथ्वी या सूर्य में हैं, केवल कम मात्रा में या विशेष अवस्था में रहने के कारण उनकी रेखाएँ अभी तक वर्तमान यन्त्रों से नहीं देखी जा सकी हैं।

काली नीहारिकाओं की दूरी—काली नीहारिकाओं की दूरी ज्ञात करने के लिए शक्तिशाली सांख्यिक रीतियों का उपयोग किया गया है। जरमन ज्योतिषी मैक्स वोल्फ ने पहले-पहल इस रीति का उपयोग किया। आकाश के दो क्षेत्र चुन लिये जाते हैं, जो क्षेत्रफल में बराबर रहते हैं। एक क्षेत्र तो ऐसा चुना जाता है जहाँ काली नीहारिका रहती है, दूसरा क्षेत्र ऐसा जहाँ अन्तर्तारकीय धूलि के कारण न्यूनतम शोषण होता है। इन क्षेत्रों में विविध श्रेणियों के तारों की गिनती की जाती है। इन गिनतियों की तुलना से पता चलता है कि चमकीले तारे तो दोनों क्षेत्रों में प्राय बराबर संख्या में रहते हैं; परंतु एक विशेष चमक से कम चमकवाले तारों की गिनती काली नीहारिकावाले क्षेत्र में कम रहती है। इसका अर्थ यह लगाया जाता है कि उस विशेष चमक से अधिक चमकीले तारे नीहारिका के इस पार हैं और उससे कम चमकीले तारे अधिकतर नीहारिका के उस पार हैं। गणना से पता रहता ही है कि किसी विशेष औसत चमक के तारे हमसे कितनी दूरी पर हैं। इसलिए ज्ञात हो जाता है कि नीहारिका हमसे कितनी दूरी पर है। देखा गया है कि काली नीहारिकाएँ आकाशगंगा के दूरस्थ भागों से दूर नहीं हैं और इसलिए वे हमारे मंदाकिनी-संस्था के ही अंग हैं। यह भी नापा गया है कि अधिकांश काली नीहारिकाएँ ३० प्रतिशत से ले कर ९० प्रतिशत तक प्रकाश का शोषण करती हैं।

ग्रहीय नीहारिकाएँ—हरशेल और उसके समय के ज्योतिषियों ने देखा कि आकाश में कहीं-कहीं ऐसे पिंड भी थे जो चमक में नीहारिकाओं की तरह थे, परंतु उनकी वृत्ताकार आकृति ग्रहों की तरह थी। इतना निश्चित था कि ये पिंड ग्रह नहीं थे, क्योंकि ग्रह तारों के बीच चलते रहते हैं और सूर्य की प्रदक्षिणा करते हैं, परंतु ये पिंड तारों के बीच निश्चल थे। ग्रहों की आकृति के होने के कारण सर विलियम हरशेल ने इनको ग्रहीय नीहारिकाएँ कहना आरंभ किया, यद्यपि उनमें और ग्रहों में कोई भी संबंध नहीं है। ग्रह सब सूर्य के पास हैं, परंतु ग्रहीय नीहारिकाएँ ३,००० से ३०,००० प्रकाशवर्ष पर हैं, जहाँ, जैसा पहले बताया जा चुका है, एक प्रकाशवर्ष ७×१०^{१२} मील का होता है। ग्रहीय नीहारिकाओं के केंद्र में नीला तारा रहता है। नीले रंग का अर्थ यह है कि वह तारा अति तप्त होगा। पीछे ज्योतिषियों ने यह सिद्ध किया कि नीहारिकामय आवरण का प्रकाश वस्तुतः केंद्रीय तारे के पराकासनी प्रकाश से उत्पन्न होता है। पाठकों ने आधुनिक फ्लुओरेसेंट ट्यूब लाइट देखा होगा। इसकी नलिका के भीतर प्रदीप्तमान (फ्लुओरेसेंट) पदार्थ पुता रहता है। जब नलिका के एक सिरे से दूसरे सिरे तक विद्युन्मोचन (डिसचार्ज) होता है तब भीतर-ही भीतर पराकासनी प्रकाश उत्पन्न होता है। यदि नलिका स्वच्छ होती तो हमको बहुत कम प्रकाश मिलता, क्योंकि विशुद्ध पराकासनी प्रकाश को हम देख नहीं सकते। परंतु जब ऐसा प्रकाश प्रदीप्तमान पदार्थ पर पड़ता है तब उस पदार्थ से उज्ज्वल प्रकाश निकलने लगता

है । इसी तरह ग्रहीय नीहारिकाओ में भी प्रकाश उत्पन्न होता है । केंद्रीय तारे से जितना प्रकाश हमें मिलता है उसका चालीस, पचास गुना प्रकाश हमें उसके आवरण से मिलता है । अनुमान किया गया है कि केंद्रीय तारे का तापक्रम लाख या सवा लाख डिगरी सेंटीग्रेड होता होगा ।

ग्रहीय नीहारिकाएँ कोई छोटी और कोई बडी होती है, परतु साधारणत उनका व्यास दस खरब मील के आस-पास होता है । यह व्यास सूर्य और पृथ्वी के बीच की दूरी से दस हजार गुना बडा है । परतु नीहारिका का द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान का पचमाश ही होगा । इस प्रकार केंद्रीय तारे को छोड ग्रहीय नीहारिकाओ में इतना कम घनत्व रहता है कि उसकी कल्पना भी हमारे लिए कठिन है । अच्छे से अच्छे यत्र से जब हम किसी बरतन की हवा को पप से निकाल डालते है तब भी हम इतना कम घनत्व नही उत्पन्न कर पाते । गोल्डबर्ग और ऐलर ने अपनी पुस्तक 'ऐटम्स, स्टार्स ऐंड नेब्युली' में ग्रहीय नीहारिकाओ की सरचना और घनत्व दरसाने के लिए निम्न उदाहरण दिया है

"मान लीजिये कि पानी पीने के साधारण गिलास में साधारण तापक्रम पर और साधारण निपीड (प्रेशर) पर हाइड्रोजन गैस भरी है । इसमें एक चम्मच साधारण वायु मिला दीजिये और धूलि के दो चार कण । अब गिलास को बन्द कर दीजिये और कल्पना कीजिये कि गिलास बढ कर माउट एवरेस्ट के बराबर हो जाता है और फूल कर उसका व्यास दो मील हो जाता है । तो गिलास के भीतर प्रसरित गैस घनत्व में और सरचना में बहुत-कुछ ग्रहीय नीहारिकाओ के समान हो जायगा ।'

ये नीहारिकाएँ बहुत बडी है, इसी से वे हमें दिख जाती है अन्यथा उनके पृष्ठ के प्रति वर्गमील से इतना कम प्रकाश आता है कि उनका दिखाई पडना कठिन ही होता ।

जैसा पहले कहा जा चुका है ग्रहीय नीहारिकाएँ प्राय वृत्ताकार होती है और उनकी सीमा तीक्ष्ण होती है । प्रसृत नीहारिकाओ की तरह उनका क्षेत्र धीरे-धीरे मद प्रकाश का हो कर नही मिटता है ।

ग्रहीय नीहारिकाओ का वर्णपट---चमकीले प्रसृत नीहारिकाओ के वर्णपट की तरह ग्रहीय नीहारिकाओ के वर्णपट में भी चमकीली रेखाएँ रहती है । ये रेखाएँ तीक्ष्ण रहती है जिस का अर्थ यह है कि नीहारिका का घनत्व कम है । हाइड्रोजन की रेखाएँ प्रमुख होती है । हीलियम की रेखाएँ भी साधारणत वर्तमान रहती है । ऑक्सिजन की रेखाएँ सब से चटक होती है । बहुत दिनो तक ऑक्सिजन वाली रेखाओं की उपस्थिति समझ में नही आती थी, क्योकि ऐसी रेखाएँ हमारी प्रयोगशालाओ में कभी देखने में न आयी थी । इस विचार से कि नीहारिकाओ में सभवत नवीन तत्व है जिसके कारण ये रेखाएँ बनती है। ज्योतिषियो ने उस कल्पित तत्व का नाम "नेब्यूलियम" रख दिया । परतु भौतिक विज्ञान और रसायन में उन्नति होने पर इतना निश्चित हो गया कि किसी नवीन तत्व के लिए प्रकृति में स्थान नही है । अब हम जानते है कि ये रेखाएँ ऑक्सिजन के कारण उत्पन्न होती है । नीहारिकाओ की अपेक्षा पृथ्वी पर परिस्थिति

इतनी विभिन्न हैं कि ऑक्सिजन यहाँ उस प्रकार चमक नहीं पाता जिस प्रकार वह नीहारिका पर चमकता है, परन्तु सिद्धान्त के बल पर हम देखते हैं कि कल्पित नेब्युलियम वाली रेखाएँ वस्तुतः ऑक्सिजन की रेखाएँ होंगी।

उत्पत्ति—ग्रहीय नीहारिका को हम तारे का वातावरण समझ सकते हैं जो दूर तक पहुँचा हुआ है। परन्तु प्रश्न यह है कि इतना विस्तृत वातावरण उत्पन्न कैसे हुआ होगा। हम जानते हैं कि कुछ तारों में विस्फोट होता है जिससे तारे की चमक बहुत बढ़ जाती है। इससे प्रायः अदृश्य तारा बहुत चमकीला हो जाता है और ऐसा जान पड़ता है जैसे नवीन तारा उत्पन्न हो गया हो। ऐसे तारों को नूतन तारा या नवीन तारा (अँग्रेजी में नोवा) कहते हैं। क्या यह संभव है कि ग्रहीय नीहारिकाएँ नूतन तारों के अवशेष हैं? समर्थन में यह कहा जा सकता है कि लिक वेधशाला के अनुसंधानों से स्पष्ट है कि ये नीहारिकाएँ अब भी फैल रही हैं, और हम यह जानते हैं कि नूतन तारा के वातावरण फैलते रहते हैं, और यह भी कि बहुत से नूतन तारे अत्यंत तप्त हैं, उसी प्रकार जैसे ग्रहीय नीहारिकाओं के केंद्र वाले तारे। परन्तु ग्रहीय नीहारिकाओं को नूतन तारों के अवशेष मानने में एक कठिनाई है। नूतन तारा से प्रक्षिप्त पदार्थ अति वेग से बाहर जाता है। वेग का कई सौ मील प्रति सेकंड होना नूतन तारा के वातावरण के लिए कोई असाधारण बात नहीं है। परन्तु ग्रहीय नीहारिकाओं के वातावरण में फैलने का वेग केवल लगभग १५ मील प्रति सेकंड होता है। यह अवश्य संभव है कि नूतन तारों के वातावरण पहले अधिक वेग से फैलते हों, फिर धीरे धीरे। यह भी हो सकता है कि कुछ नूतन तारे धीरे-धीरे ही बढ़ते हों। परन्तु यदि यही मान लिया जाय कि ग्रहीय नीहारिकाएँ उसी वेग से जन्मकाल से ही बढ़ती रही हैं जिस वेग से वे इस समय बढ़ रही हैं तो उनकी आयु कुल ३०,००० वर्ष निकलती है। यदि बढ़ने का वेग पहले अधिक था और अब कम है तो उन की आयु और भी कम होगी। यदि तर्क के लिए मान लिया जाय कि उनकी आयु ३०,००० ही वर्ष है तो हम देखते हैं कि अन्य तारों के सामने उनकी आयु एक निमेष मात्र है। यदि ये नीहारिकाएँ इसी प्रकार फूलती रहेंगी तो कुछ हजार वर्षों में—और इतना समय साधारण तारों के जीवन में केवल क्षण भर के तुल्य है—ग्रहीय नीहारिकाएँ अंतर्तारकीय अंतरिक्ष में विलीन हो जायँगी, परन्तु संभव है कि तब तक कई नई ग्रहीय नीहारिकाएँ अन्य तारों के विस्फोट से तैयार हो जायँ। इस समय ग्रहीय नीहारिकाओं की संख्या लगभग २०० है।

तारापुंज—आकाश में कहीं-कहीं छोटे-से क्षेत्र में बहुत-से तारे एक साथ ही दिखाई पड़ते हैं। यदि तारों का घनत्व पर्याप्त रहता है तो ऐसे समूहों को तारापुंज कहते हैं। दो-चार तारापुंज कोरी आँख से देखे जा सकते हैं। इनमें कृत्तिका तारापुंज सबसे अधिक प्रसिद्ध है। कोरी आँख से, अर्थात् बिना दूरदर्शक की सहायता लिए, इसमें छ, या यदि दर्शक की दृष्टि अतितीक्ष्ण है तो सात तारे दिखाई पड़ते हैं। परन्तु छोटे दूरदर्शक में इस तारा-पुंज में सौ से अधिक तारे दिखाई पड़ते हैं। एक दूसरा तारा-पुंज रोहिणी (एल्डिबैरन) नामक तारे को घेरे हुए है। रोहिणी तारा खूब चमकीला है, पुंज का नाम वृषभिका (हाइडीज, Hyades) है। इस तारा-पुंज को

भी प्राचीन काल के ज्योतिषियों ने देखा था। केश (कोमा बेरेनिसेज) तारामंडल में भी एक तारापुंज है जो कोरी आँख से दिखाई पड़ता है, यद्यपि यह मंद चमक का है। लगभग बीस अन्य तारापुंज हैं जिनके तारे कोरी आँख से पृथक्-पृथक् नहीं दिखाई पड़ते, उन्हें देखने पर ऐसा जान पड़ता है जैसे वे नीहारिकाएँ हों।

दूरदर्शक से देखने पर कुछ तारापुंजों में हजारों तारे एक साथ ही दिखाई पड़ते हैं। वे बहुत सुन्दर जान पड़ते हैं। परंतु इनका महत्त्व केवल इतना ही नहीं है कि वे सुन्दर या विचित्र हैं। इन तारापुंजों के अध्ययन से ज्योतिष के ज्ञान में बड़ी वृद्धि हुई है। तारों की दूरियों के ज्ञान में इनसे विशेष सहायता मिली है। इनकी संरचना तथा तारों की निजी गति से स्पष्ट हो जाता है कि एक तारापुंज के तारे हमसे लगभग एक ही दूरी पर रहते हैं। इसलिए पुंजों के तारों के अध्ययन से चमक और वर्णपट का संबंध, या परिवर्तनशील तारों के चक्रकाल और उनकी वास्तविक चमक का संबंध अधिक निश्चितता से स्थापित किया जा सका है। इन तारापुंजों के अध्ययन से विश्व के संगठन का ज्ञान और काली नीहारिकाओं के अस्तित्व का प्रमाण अधिक अच्छा मिल सका है।

दूरदर्शक से ही दिखाई पड़ने वाले तारापुंजों में से अधिकांश का पता मेसिये, विलियम हरशेल और जॉन हरशेल को लग चुका था। मेसिये की सूची में, जो सन् १७८४ में छपी थी, ५७ तारापुंजों का उल्लेख था। तारापुंजों को इंगित करने के लिए या तो मेसिये संख्याओं का या जे० एल० ई० ड्रायर (Dreyer) के न्यू जेनरल कैटलग (एन० जी० सी०, N.G.C.) में दी गयी संख्याओं का प्रयोग किया जाता है।

तारापुंजों की जातियाँ—हरशेल ने तारापुंजों को दो जातियों में विभक्त किया था, खुले तारापुंज और सघन तारापुंज। पहले तो समझा यही जाता था कि ये दो जातियाँ विशेष विभिन्न नहीं हैं, केवल संयोगवश किसी में कम किसी में अधिक तारे होते हैं, परंतु अमरीका के ज्योतिषी हारलो शेपली की खोजों से पता चला है कि इन दो जातियों में अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंतर है। केवल उनकी संरचना में ही अंतर नहीं है, हमारे विश्व में सघन तारापुंजों का स्थान ही कुछ और है।

खुले तारापुंजों में दो-चार दरजन से लेकर दो-चार हजार तक तारे हो सकते हैं। उनकी आकृति किसी विशेष रूप की नहीं होती और दूरदर्शक से सब तारे सुगमता से पृथक्-पृथक् दिखाई पड़ते हैं। ये तारापुंज आकाशगंगा में बिखरे हुए हैं। ऐसा जान पड़ता है मानो आकाशगंगा के ही तारे कहीं-कहीं अधिक घनीभूत हो गये हैं और इस प्रकार ये तारापुंज उत्पन्न हुए हैं। आकाशगंगा में ही पाये जाने के कारण इन तारापुंजों को गांग-तारापुंज (गैलैक्टिक क्लस्टर) भी कहते हैं और अब यही नाम अधिक प्रचलित है।

सघन तारापुंजों को अब गोलाकार तारापुंज (ग्लोब्युलर क्लस्टर) कहते हैं। इनमें कई हजार से कई लाख तक तारे रहते हैं। प्रायः सभी का संगठन एक-सा होता है। बीच में

तारे इतने सघन होते हैं कि फोटोग्राफों में वे एक-दूसरे से मिल जाते हैं। दूर होने के कारण तारे हमें मंद प्रकाश के दिखाई पड़ते हैं, परन्तु उनकी वास्तविक चमक अधिक होती है। लगभग १०० गोलाकार तारापुंजों का हमें पता है।

गांग-तारापुंज—तारापुंजों में तारों को इतना निकट रहना चाहिए कि वे एक दूसरे की आकर्षण-शक्ति से बँधे हों। यदि तारों की संख्या लगभग २० से कम रहती है तो उस समूह को तारापुंज न कहकर बहुल तारा (मल्टिपुल स्टार) कहा जाता है। कुछ तारे कोरी आँख से या छोटे दूरदर्शक में केवल एकहरे दिखाई पड़ते हैं, परन्तु अच्छे दूरदर्शक से देखने पर पता चलता है कि वे दो या अधिक तारों के समूह हैं। दो तारों की संस्था को युग्म तारा (बाइनेरी) कहते हैं, परन्तु जब समूह में दो से अधिक तारे रहते हैं तो समूह को बहुल तारा कहते हैं। कहाँ बहुल तारा का अंत होता है और तारापुंज का आरंभ, यह बहुत कुछ कृत्रिम है। परन्तु मोटे हिसाब से लगभग २० या अधिक तारों के रहने पर ही उस समूह को तारापुंज कहते हैं। कुछ तारापुंजों में तो तारे इतनी दूर-दूर पर छिटके रहते हैं कि यह कहना कठिन हो जाता है कि कौन-से तारे तारा-पुंज के हैं और कौन-से बाहरी।

यों तो सभी तारापुंजों में कुछ ऐसे तारे भी आ पड़ते हैं जिनका उस तारापुंज से कोई वास्तविक संबंध नहीं है, केवल संयोगवश वे तारापुंज की दिशा में हैं, परन्तु वास्तव में वे तारा-पुंज के पीछे बहुत दूर या तारापुंज के सामने, उससे बहुत कम दूरी पर हैं। केवल निजी गति या वर्णपट के आधार पर पता चलता है कि ये तारे तारापुंज के सदस्य नहीं हैं। फिर, हम देख चुके हैं कि तारों की दूरी ठीक-ठीक ज्ञात नहीं की जा सकती, दूरियों के नापने में काफी अनिश्चितता रह जाती है। इसलिए तारापुंज के वास्तविक संगठन का ज्ञान हमें इतना अच्छा नहीं हो पाता जितना हम चाहते हैं। लंबाई-चौड़ाई का ठीक पता तो सुगमता से लग जाता है, परन्तु गहराई का पता साधारणतः अनुमान और तर्क से ही लगाया जाता है। तारा-पुंज यदि अधिक दूर रहता है तो उसकी सामूहिक दूरी का भी अच्छा ज्ञान हम को नहीं रहता और इसलिए तारापुंज के कोणिक माप को हम लंबाई चौड़ाई में ठीक-ठीक रूपांतरित नहीं कर पाते। इन सब कारणों से तारापुंजों का अध्ययन उतना अच्छा नहीं हो सका है जितना वांछनीय है।

कृत्तिका-तारापुंज में ३०० से लेकर ५०० तक तारे होंगे। ये तारे ५० प्रकाशवर्ष व्यास के गोले में बिखरे हुए हैं। केंद्र में तारों का घनत्व अधिक है। चमकीले तारे भी केंद्र के ही पास हैं। जैसे-जैसे हम केंद्र से दूर जाते हैं तैसे-तैसे प्रत्येक हजार घन प्रकाशवर्ष में उनकी संख्या कम होती जाती है। छोर तक पहुँचते पहुँचते तारों की गिनती इस प्रकार कम होती है कि कहना कठिन होता है कि तारापुंज का विस्तार कितना है। इस तारापुंज के केंद्र में भी, जहाँ तारों का घनत्व सबसे अधिक है तारे एक-दूसरे से कम-से-कम डेढ़ प्रकाशवर्ष पर हैं। ट्रंपलर ने लिखा है कि यदि हम पैमाने के अनुसार कृत्तिका-तारापुंज की मूर्ति बनाना चाहें और तारों को आलपीन के मुंडों

से निरूपित करें तो आलपीनों को चार-चार पाँच-पाँच मील पर एक-दूसरे से रखना पड़ेगा। डेढ़ सौ मील व्यास के गोले में तीन-चार सौ पिन लगा देने से तारापुंज की मूर्ति प्रस्तुत हो जायगी।

अन्य तारापुंज कृत्तिका-तारापुंज से साधारणतः छोटे ही हैं; उनका व्यास १५ से ७५ प्रकाशवर्षों तक होगा। अधिक तारे वाले पुंज कम तारे वाले पुंजों से अधिक विस्तृत हैं। इसलिए प्रत्येक सौ घन प्रकाशवर्ष में तारों की गिनती मोटे हिसाब से प्रायः एक-जैसी ही रहती है।

वर्णपट और निजी गति—विविध तारापुंजों के तारों के वर्णपटों में बड़ी विभिन्नता हो सकती है। कृत्तिका-तारापुंज के तारे प्रायः सभी अतितप्त हैं। उनमें बहुत-से वामन तारे भी हैं। दैत्य और अति दैत्य तारों का प्रायः अभाव है। परंतु वृषभिका तारापुंज (हायाडीज) में कम तापक्रम के दैत्य तारे बहुत-से हैं। ऊपर हम देख चुके हैं कि तारापुंजों में तारों का घनत्व विशेष अधिक नहीं होता। तो भी सूर्य के आस-पास तारों का घनत्व जितना है उसका लगभग १०० गुना घनत्व कृत्तिका-तारापुंज के केंद्र पर है। तारापुंजों के सबसे अधिक चमकीले तारे हमारे सूर्य से बहुधा कई हजार गुना अधिक चमकीले होते हैं। चमकीले तारे साधारण मंद तारों से अधिक भारी भी होते हैं। केंद्रीय भारी तारों के आकर्षण के कारण ही पुंज के अन्य तारे छिटकने न पाते होंगे।

तारापुंजों में युग्म तारे भी होते हैं, जिनमें कुछ युग्मों के सदस्य इतने सटे रहते हैं कि वे दूरदर्शक से भी पृथक्-पृथक् नहीं देखे जा सकते, केवल वर्णपट से उनके युग्म तारा होने का पता चलता है। वर्णपट में उन की काली रेखाएँ दोहरी हो जाती हैं, जो इस बात का प्रमाण है कि तारा युग्म तारा है, एक सदस्य हमारी ओर आ रहा है और दूसरा उलटी ओर जा रहा है। परंतु गाग-तारापुंजों में सेफीइड तारे नहीं मिलते जिनका प्रकाश नियामानुसार घटा-बढ़ा करता है। इसी से इन तारापुंजों की दूरियाँ उतनी सच्चाई से नहीं नापी जा सकती हैं जितनी गोलाकार तारापुंजों की।

एक तारापुंज के विविध तारों की निजी गतियाँ प्रायः बराबर होती हैं, अर्थात् सब तारे एक वेग से समानांतर दिशाओं में चलते हुए दिखाई पड़ते हैं। अवश्य ही, परस्पर आकर्षण के कारण तारे ठीक-ठीक समानांतर दिशाओं में न चलते होंगे, परंतु परस्पर आकर्षण से उत्पन्न वेग सामूहिक वेग से कम होता होगा। कभी-कभी आकाश में दूर-दूर तक बिखरे तारों में एक ही निजी गति देखी जाती है। यदि उनमें और भी कोई समानता हुई तो समझा जाता है कि वे एक ही तारापुंज के तारे हैं, यद्यपि पृथ्वी इस स्थिति में (प्रायः उनके बीच में) है कि वे हमें तारापुंज के समान नहीं दिखाई देते। ऐसे तारापुंज का एक प्रसिद्ध उदाहरण सप्तर्षि-मंडल है सप्तर्षि के सात तारों में से पाँच और लुब्धक (सिरियस) नामक तारे समानांतर रेखाओं में और विशेष वेग से भागे जा रहे हैं। उनके वर्णपटों में भी समानता है। इसलिए विश्वास किया जाता है कि ये तारे एक ही तारापुंज के सदस्य हैं, यद्यपि आकाश में ये एक दूसरे से बहुत दूर-दूर पर दिखायी पड़ते हैं। ऐसे तारापुंजों को चल तारापुंज (मूवेबुल क्लस्टर्स) कहते हैं।

गांग-तारापुंजों का वितरण—जब इस पर विचार किया जाता है कि गांग-तारापुंज दूरी और दिशा में किस प्रकार वितरित हैं तब पता चलता है कि उनमें से अधिकांश तारापुंज आकाशगंगा के धरातल में हैं और ३५,००० प्रकाशवर्ष के व्यास के वृत्त में छिटके हुए हैं। सूर्य ही इस वृत्त का केंद्र है, कारण यह जान पड़ता है कि आकाशगंगा में बिखरी हुई धूलि आदि के कारण दूरस्थ तारापुंज छिप जाते हैं, या पृष्ठभूमि के तारों के मेघ में मिल जाते हैं।

इस प्रकार आकाश में वितरण, निजी गतियाँ, और तारों की जातियाँ, इन सभी के अनुसार गांग-तारापुंजों का संबंध आकाशगंगा से स्थापित हो जाता है। इसलिए अनुमान किया जाता है कि इन तारापुंजों की उत्पत्ति भी हमारी मंदाकिनी-संस्था के साथ ही हुई होगी।

गोलाकार तारापुंज—हमें केवल लगभग १०० गोलाकार तारापुंजों का पता है। परंतु वे आकाश में समान रूप से वितरित नहीं हैं। यदि धनु तारामंडल को केंद्र मान कर आकाश का आधा भाग अलग कर लिया जाय तो इसी आधे भाग में गोलाकार तारापुंज प्रायः सभी पाये जाते हैं। वे आकाशगंगा के धरातल से दूर तक छिटके हुए हैं। जैसे-जैसे हम आकाशगंगा के धरातल के पास पहुँचते हैं, वैसे-वैसे उनकी संख्या बढ़ती जाती है, परंतु आकाशगंगा के किनारे पर पहुँचने पर उनकी संख्या एकाएक कम हो जाती है। सात-आठ अंश (डिगरी) चौड़ी मध्य धारा में दो-तीन से अधिक गोलाकार तारापुंज नहीं दिखाई पड़ते, और ठीक इसी मध्य धारा में गांग-तारापुंजों का बाहुल्य है। दूरी और दिशा का ध्यान रख कर गोलाकार तारापुंजों को बिंदुओं से निरूपित करने पर पता चलता है कि वे मंदाकिनी-संस्था के हिसाब से सब दिशाओं में प्रायः समान रूप से बिखरे हैं, परंतु मंदाकिनी-संस्था के केंद्र से सूर्य के दूर रहने के कारण धनु तारा-मंडल की ओर वे अधिक दिखाई पड़ते हैं। मंदाकिनी-संस्था में बिखरी हुई धूलि के ही कारण संभव है कि गोलाकार तारापुंज आकाशगंगा के धरातल में नहीं दिखाई पड़ते।

गोलाकार तारापुंजों का संगठन आदि—ज्ञात गांग-तारापुंजों की अपेक्षा गोलाकार तारापुंज बहुत अधिक दूरी पर हैं। उनकी दूरी १२ हजार से लेकर एक लाख प्रकाशवर्ष तक है। नाप में एक-एक गोलाकार तारापुंज ५० से ३०० प्रकाशवर्ष तक का होगा, परंतु इन तारा-पुंजों की नाप का ठीक अनुमान करना कठिन है। कारण यह है कि यह कहना कठिन होता है कि कहाँ तक तारापुंज के तारे हैं और कहाँ तक पृष्ठभूमि के तारे। फिर, अधिक प्रकाशदर्शन (एक्सपोज़र) देकर फोटो खींचने पर तारापुंज का व्यास अधिक ही जान पड़ता है। ऊपर बतायी गई नापों में तारापुंज के अति दूरस्थ तारों की गिनती नहीं की गयी है। हम देखते हैं कि गांग-तारापुंजों की अपेक्षा गोलाकार तारापुंज तिगुने-चौगुने बड़े होते हैं। अधिकांश गोलाकार तारा-पुंज देखने में वृत्ताकार नहीं होते, वे दीर्घवृत्ताकार अर्थात् लंबोतरे होते हैं। इससे समझा जाता है कि गोलाकार तारापुंज किसी केंद्रीय धुरी के चारों ओर नाचते होंगे। शेष गोलाकार तारापुंजों का दीर्घवृत्ताकार न होना यह नहीं सिद्ध करता कि वे किसी धुरी पर नाचते

न होगे । उनके गोल दिखायी पडने का कारण यह हो सकता है कि हम प्राय. उनकी धुरी की दिशा में है ।

गोलाकार तारापुजो में वामन तारो का अभाव जान पडता है । चमकीले तारे सब लाल अतिदैत्य तारे जान पडते है और शेष तारे साधारण दैत्य । परतु सभव है कि इन तारापुजो में भी वामन तारे उपस्थित हों और अधिक दूरी के कारण वे हमको न दिखायी पडते हो । गणना से पता चलता है कि इन तारापुजो में यदि हमारे सूर्य के समान चमकीले तारे होगे तो हमारे वर्तमान दूरदर्शको में न दिखायी पडेंगे ।

विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि गोलाकार तारापुजो में परिवर्तनशील प्रकाश वाले तारे बहुत होते है । अधिकाश का चक्रकाल २४ घटे से कम होता है । ये सेफीइड तारे ही है, परतु विशेष प्रकार के होने के कारण इनको तारापुजीय परिवर्तनशील (क्लस्टर टाइप वेरियेबुल्स) कहते है । ऐसा समझा जाता है कि व्यास के चक्रकालिक रूप से घटते-बढते रहने से इन तारो का प्रकाश घटता-बढता रहता है ।

गोलाकार तारापुजो के तारो की निजी गतियाँ अभी नही नापी जा सकी है क्योकि ये तारापुज बहुत दूर है । परतु दृष्टिरेखा में कई गोलाकार तारापुजो के वेग नापे गये है क्योकि यह वेग वर्णपट में रेखाओ के विचलन से तुरत नापा जा सकता है ; अधिक वर्ष तक ठहर कर दुबारा फोटोग्राफ लेने की आवश्यकता नही रहती । पता चला है कि गोलाकार तारापुज ५० से २५० मील प्रति सेकेंड के वेग से चलते है । ऐसा जान पडता है कि मदाकिनी-सस्था के केंद्र के चारो ओर वे चक्कर लगाते है ।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि गाग-तारापुज और गोलाकार तारापुज दोनो ही का सबध आकाशगगा से है—गोलाकार तारापुज अगाग नही कहे जा सकते । तो भी गाग-तारापुज के नाम से व ही तारापुज समझे जाते है जो गोलाकार तारापुज नही है ।

चतुर्थ अध्याय

अगांग नीहारिकाएँ

पिछले अध्यायों में हम तारापुंजों और नीहारिकाओं पर विचार कर चुके हैं। अब हम उन नीहारिकाओं पर विचार करेंगे जो हमारी ही मंदाकिनी-संस्था की तरह स्वतंत्र और उसी प्रकार विशाल ब्रह्मांड हैं, परंतु अत्यंत दूर होने के कारण हम को अत्यंत छोटी और नीहारिका के समान धुंधली जान पड़ती हैं। इनको अगांग नीहारिकाएँ (एक्स्ट्रा गैलैक्टिक नेब्युली) कहते हैं, क्योंकि ये हमारी मंदाकिनी-संस्था से संबंधित नहीं हैं। अगांग नीहारिकाएँ आकाश में सर्वत्र छिटकी हुई हैं। केवल ये आकाशगंगा के पास या आकाशगंगा में नहीं दिखाई पड़तीं। इसके अतिरिक्त इनमें एक विशेषता यह भी है कि प्रायः सभी अगांग नीहारिकाओं का संगठन विशेष प्रकार का होता है। उनकी वास्तविक नाप चाहे जो कुछ हो, अगांग नीहारिकाओं में से सब से बड़ी दिखाई पड़ने वाली देवयानी (ऐंड्रोमिडा) नीहारिका है जिस का वर्णन पहले किया जा चुका है। छोटी दिखाई पड़ने वाली नीहारिकाओं के छोटेपन की कोई सीमा नहीं जान पड़ती। केवल हमारे दूरदर्शक की शक्ति पर निर्भर है कि हम कहाँ तक छोटी नीहारिकाएँ देख सकते हैं। माउंट विल्सन के १०० इंच वाले दूरदर्शक से श्रेणी २१.५ तक की नीहारिकाओं का फोटोग्राफ खींचा गया है। जब माउंट पालोमर का नवीन २०० इंच व्यास वाला दूरदर्शक नीहारिकाओं की फोटोग्राफी में विधिवत् लगेगा तब निस्संदेह हम और भी मंद नीहारिकाओं का फोटोग्राफ ले सकेंगे। इन फोटोग्राफों में नीहारिकाओं और मंद तारों में विशेष अंतर नहीं दिखाई पड़ता, फोटोग्राफ को सूक्ष्मदर्शक से देखने पर नीहारिकाएँ कुछ अनीदार जान पड़ती हैं। इसी से वे पहचानी जा सकती हैं। नीहारिकाओं की संख्या अति बृहत् है। तेरहवीं श्रेणी तक की सब नीहारिकाओं को गिनने पर पता चलता है कि आकाश में लगभग १००० अगांग नीहारिकाएँ हैं। चौदहवीं श्रेणी तक की सब नीहारिकाओं की संख्या इसकी चौगुनी हो जाती है। पंद्रहवीं श्रेणी तक की सब नीहारिकाओं की संख्या इसकी भी चौगुनी, और इसी प्रकार से श्रेणी में एक की वृद्धि होने पर नीहारिकाओं की संख्या चौगुनी होती चली जाती है। माउंट विलसन के १०० इंच वाले दूरदर्शक से लगभग एक अरब अगांग नीहारिकाओं का फोटोग्राफ खींचा जा सकता है। जब इस पर विचार किया जाता है कि इन नीहारिकाओं में से प्रत्येक स्वयं एक विशालकाय ब्रह्मांड है जिसमें हमारी मंदाकिनी-संस्था की तरह ही कई खरब तारे हैं और संभवतः अनेक प्रसृत नीहारिकाएँ और तारापुंज हैं, और प्रत्येक तारे के चारों ओर ग्रह हो सकते हैं और कुछ पर मनुष्य-जैसे प्राणी भी, तब हम आश्चर्य के साथ देखते हैं कि आधुनिक ज्योतिष ने हमारे ज्ञान का विस्तार कितना बढ़ा दिया है। इन अगांग नीहारिकाओं को ब्रह्मांड (गैलक्सी) और द्वीपविश्व (आइलैंड यूनिवर्स) भी कहते हैं। मंदतम प्रकाश की अगांग नीहारिकाओं की दूरी का भी अनुमान प्रथम अध्याय में बतायी गयी रीतियों से कर लिया गया है। वे हम से लगभग ५० करोड़ प्रकाशवर्ष की दूरी पर होंगी।

अगांग नीहारिकाओं की जातियाँ—नीचे हबल (Hubble) का वर्गीकरण बताया जाता है। अधिकांश ज्योतिषी इस वर्गीकरणका उपयोग करते हैं। हबल ने इसे सन् १९२६ में प्रस्तावित किया था। इस वर्गीकरण में उन सब नीहारिकाओं का ध्यान रक्खा गया है जो इतनी चमकीली हैं कि फोटोग्राफ में ही उनकी संरचना का कुछ पता चलता है। ऐसी नीहारिकाओं में से लगभग ९८ प्रतिशत इस वर्गीकरण के अंतर्गत हैं। केवल लगभग २ प्रतिशत इस वर्गीकरण में नहीं आ पाती हैं। उनको अनियमित (इर्रेगुलर) नीहारिका कहते हैं। अत्यंत मंद नीहारिकाओं की पहचान केवल इसलिए हो पाती है कि फोटोग्राफ में वे तारों की तरह तीक्ष्ण विंदु-सी नहीं दिखाई पडती, वे नाममात्र विस्तृत रहती हैं। परंतु उनके संगठन का कुछ पता न रहने के कारण इस वर्गीकरण में उनपर विचार नहीं किया गया है। तोभी विश्वास किया जाता है कि उनकी संरचना भी प्राय वैसी होगी जैसी अन्य नीहारिकाओं में देखी गयी है।

प्रथम वर्ग में वे अगांग नीहारिकाएँ रक्खी गई हैं जो हमें गोल और बिना भुजाओं की दिखाई पडती हैं। इस वर्ग को ई० (ई शून्य, E0) से सूचित किया जाता है। ई० वस्तुत इस बात का सूचक है कि इन नीहारिकाओं में दीर्घवृत्तता शून्य के बराबर है। इसके बाद ई१ ई२, इत्यादि, ई७ तक के वर्ग हैं। इन वर्गों में रक्खी जाने वाली नीहारिकाएँ उत्तरोत्तर अधिक

नीहारिकाओं का वर्गीकरण

भुजारहित नीहारिकाओं का वर्गीकरण उनके चिपटेपन के अनुसार किया गया है। भुजावाली निहारिकाओं की दो शाखाएँ हैं और प्रत्येक में वर्गीकरण भुजाओं के न्यूनाधिक विकसित रहने के अनुसार किया गया है।

दीर्घवृत्ताकार हैं। यदि किसी दीर्घवृत्त (एलिप्स) का दीर्घाक्ष क है और लघु अक्ष ख, तो उस दीर्घवृत्त की दीर्घवृत्तता सूचक संख्या क—ख को क से भाग देकर १० से गुणा करने पर प्राप्त होता है। उसी को ई के साथ लिख देने से नीहारिका का वर्ग ज्ञात होता है। आकाश में ई७ से अधिक चिपटी नीहारिकाएँ दिखाई नहीं पडती।

इस प्रकार ई० से ई७ तक वे नीहारिकाएँ हैं जो गोल, प्राय गोल, दीर्घवृत्ताकार या अति-दीर्घवृत्ताकार हैं। इनके बाद उन नीहारिकाओं की बारी आती है जिन में सर्पिलाकार बनावट की झलक मिलती है। इनकी दो श्रेणियाँ हैं। एक को तो अंग्रेजी अक्षर एस (S) से सूचित करते हैं; दूसरे को एस बी (SB) से। एस वर्गवाली नीहारिकाओं में भुजाएँ केंद्रीय बिंदु से निकलती हैं और भुजाएँ किसी रेखा से जुड़ी नहीं रहतीं। एस बी (SB) वाली वे नीहारिकाएँ हैं जिन में भुजाएँ एक दंड (bar) से जुड़ी हुई जान पड़ती हैं। भुजाओं के कम या अधिक खुले रहने को एस या एस बी के सामने छोटा ए, बी, सी अक्षर लगा कर किया जाता है। इस प्रकार एक श्रेणी में हमें एस-बी-ए, एस-बी-बी, एस-बी-सी, ये वर्ग मिलते हैं, दूसरी ओर हमें एस-ए, एस-बी, एस सी वर्ग मिलते हैं। चित्र से यह वर्गीकरण अधिक स्पष्ट हो जायगा। अधिकांश नीहारिकाएँ एस अर्थात् सर्पिलाकार जाति की होती हैं। संख्या में वे दीर्घवृत्ताकार नीहारिकाओं की चौगुनी हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या गोल नीहारिकाएँ वस्तुत गोल होती हैं या सब नीहारिकाएँ नारंगी की तरह कुछ चिपटी होती हैं और हम कुछ को अक्ष की दिशा से देख रहे हैं और इसलिए वे हमको गोल दिखाई पड़ती हैं। यहाँ हमें गणित से सहायता मिलती है। मान लीजिए कि नीहारिकाओं के अक्ष केवल संयोगवश विविध दिशाओं में वितरित हैं; अर्थात् किसी कारण-वश पृथ्वी के हिसाब से वे किसी विशेष दिशा में नहीं हैं, उदाहरणत ऐसा नहीं है कि अधिकांश के अक्ष पृथ्वी की ओर हैं, या पृथ्वी और नीहारिका को मिलानेवाली रेखा से समकोण बनाते हैं, इत्यादि। तो हम गणना कर सकते हैं कि कितनी नीहारिकाओं के अक्ष संयोगवश पृथ्वी की ओर पड़ेंगे, जिससे वे नीहारिकाएँ हमें गोल दिखाई पड़ेंगी। इस हिसाब से जितनी नीहारिकाओं को गोल दिखाई पड़ना चाहिए, उससे कहीं अधिक गोल नीहारिकाएँ हमें दिखायी पड़ती हैं। इससे स्पष्ट है कि विश्व में वस्तुत गोल अर्थात् गेंद की तरह गोल नीहारिकाएँ अवश्य हैं। फिर, इसकी भी गणना की गयी है कि यदि कोई गैस का पिंड अपने अक्ष पर नाचता रहे तो उस का रूप कैसा होगा। गणित बताता है कि नाचते रहने पर पिंड कुछ चिपटे गोले का रूप धारण करेगा। नाचने का वेग जितना ही अधिक होगा, वह पिंड उतना ही अधिक चिपटा होगा, परंतु जब लघु अक्ष और दीर्घ अक्ष का अनुपात १ ३ का हो जायगा तब पिंड अस्थिर हो जायगा और टूटने लगेगा। १ ३ के अनुपात रहने पर दीर्घवृत्तता-सूचक संख्या लगभग ७ हो जाती है। आकाश में भी देखा गया है कि ई७ से अधिक चिपटी दीर्घवृत्ताकार नीहारिकाएँ नहीं होतीं। जान पड़ता है कि अधिक वेग से नाचने पर गैस-पिंडों में से भुजाएँ निकल पड़ती हैं, अर्थात् उनमें से कुछ पदार्थ छटकने लगता है। यही छटका हुआ पदार्थ सर्पिलाकार भुजाओं में परिवर्तित हो जाता होगा।

नीहारिकाओं का विकास—फिर प्रश्न यह उठता है कि नीहारिकाओं का विकास कैसे होता है। क्या वे पहले गोल या प्राय गोल रहती हैं और फिर अधिकाधिक चिपटी और अंत में सर्पिलाकार हो जाती हैं? प्रसिद्ध अंग्रेज ज्योतिषी और गणितज्ञ जे० एच० जीन्स (Jeans) ने सन् १९२८ में और फिर बी० लिंडब्लाड (Lindblad) ने सन् १९३३-४१ में इस बात

की खोज की। इनके सिद्धात का ब्योरेवार विवरण आगामी अध्याय में दिया जायगा। संक्षेप में, यदि नीहारिका प्राय गोलाकार हो और धीरे-धीरे नाच रही हो तो सकुचित होने पर वह अधिक वेग से नाचने लगेगी। इसलिए उसका चिपटापन अधिक हो जायगा। पास-पडोस के अन्य पिंडो के आकर्षण से भूमध्य रेखा के पास ज्वार-भाटा उठेगा और तब कुछ द्रव्य छटकने लगेगा। भुजाएँ इसी द्रव्य से बनेंगी। ये भुजाएँ सर्पिलाकार होगी, परतु स्थायी न रहेंगी। ये कई टुकडो में टूट जायँगी और प्रत्येक टुकडे से एक गोल तारा बन जायगा। परतु इस क्रिया में करोडो वर्ष लगेंगे। इसलिए हम इस सिद्धात के सत्य होने, न होने, का प्रत्यक्ष प्रमाण नही पा सकते। यदि सिद्धात ठीक हो तो कई सौ वर्षों में भी नीहारिका के रूप में इतना कम परिवर्तन होगा कि हम कह न सकेंगे कि सिद्धात ठीक है या नही।

वितरण—अगाग नीहारिकाओ का प्रत्यक्ष वितरण पहले बताया जा चुका है। विचार करने से पता चलता है कि सभवत ये नीहारिकाएँ सर्वत्र समरूप से छिटकी हुई हैं। यह अवश्य सत्य है कि आकाशगगा के पास ये कम दिखाई देती हैं, परतु सभव है कि मदाकिनी-सस्था में बिखरी धूलि के कारण आकाशगगा के धरातल में ये मिट जाती हैं। माउट विलसन के १०० इच वाले दूरदर्शक से लिये गये फोटोग्राफ में नीहारिकाओ को सावधानी से गिनने पर पता चला कि आकाशगगा के धरातल के समीप जाने में अगाग नीहारिकाओ की सख्या अत्यत नियमित रूप से घटती है। घटने का नियम वस्तुत वही है, जो यह मानने से हमें मिलता है कि हमारे चारो ओर धूलि का वातावरण है जिसमें प्रकाश वातावरण की गहराई के अनुपात में घटता है। आकाशगगा की दिशा में दूरस्थ नीहारिकाओ के प्रकाश को बहुत दूर तक इस धूलि में चलना पडता है। इसलिए वे हमें दिखाई नही पडती। अनुमान किया गया है कि आकाशगगा के धरातल से समकोण बनानेवाली दिशा में—अर्थात् गाग ध्रुवो की दिशा मे—प्रकाश का पचमाश मिट जाता है। अन्य दिशाओ में इससे अधिक प्रकाश मिट जाता है, यहाँ तक कि आकाशगगा की दिशा में अगाग नीहारिकाएँ दिखाई ही नही पडती हैं। गाग ध्रुवो की दिशा में केवल अधिक ही नही, झुड-की-झुड नीहारिकाएँ भी दिखाई पडती हैं। कुछ झुडो में १०० से अधिक नीहारिकाएँ हैं। एक में ५०० से अधिक नीहारिकाएँ हैं। इन झुडो को नीहारिका-पुज कहना अधिक उत्तम होगा।

ऊपर आकाशीय वितरण की चर्चा की गई है। जब हम गहराई पर भी विचार करते है, अर्थात् जब हम नीहारिकाओ की दूरी पर भी विचार करते है, तो पता चलता है कि जहाँ तक हमारे दूरदर्शको की पहुँच है, वहाँ तक नीहारिकाएँ अतरिक्ष में सर्वत्र एक रूप से बिखरी हुई हैं। इस का प्रमाण यह है कि जब हम इतना कम प्रकाशदर्शन (एक्सपोज़र) देकर फोटोग्राफ लेते हैं कि दसवी श्रेणी तक की नीहारिकाओ का फोटोग्राफ उतरे, फिर इतना प्रकाशदर्शन देते है कि बारहवी श्रेणी तक की नीहारिकाओ का फोटोग्राफ उतरे, और इसी प्रकार चौदहवी, सोलहवी आदि श्रेणियो तक की नीहारिकाओ के फोटोग्राफ उतारे जाते हैं, और इन सब श्रेणियो तक की नीहारिकाओ को गिनते है तो उनकी गिनती उसी क्रम से बढती है जिस क्रम से नीहारिकाओ के सर्वत्र एक समान घनत्व से बिखरे रहने पर बढती। इससे प्रत्यक्ष हो जाता है कि

अगांग नीहारिकाओं की दुनिया सीमित नहीं है। स्मरण रखना चाहिए कि जब इसी रीति का प्रयोग करके तारों के बिखरे रहने का पता लगाया गया था तब पता चला था कि तारे बहुत दूर तक नहीं फैले हैं। वे सीमित स्थान में ही बिखरे हैं। इसका समर्थन पीछे तब हुआ जब उनकी दूरियाँ नापी जा सकीं और पता चला कि तारे सब हमारी ही मदाकिनी-संस्था में हैं।

अगांग नीहारिकाएँ आकाश में कितनी दूर-दूर पर बिखरी हुई हैं, इसका अनुमान निम्न-लिखित युक्ति से किया जा सकता है। यदि हम पैमाने के अनुसार इन नीहारिकाओं का निरूपण करना चाहें और हम दिल्ली शहर को अपनी मदाकिनी-संस्था का केंद्र मानें तथा अपने निकटतम द्वीपविश्व को मेरठ पर रक्खें तो इस पैमाने पर हमारी मदाकिनी-संस्था दिल्ली शहर से कुछ ही बड़ी ठहरेगी। मेरठ शहर हमारे निकटतम विश्वद्वीप को निरूपित करने के लिए काफी बड़ा है। हम देखते हैं कि द्वीप-विश्व बहुत दूर-दूर पर छिटके हुए हैं और उनके बीच बहुत-सा स्थान खाली छूटा है। साथ ही सब ज्ञात द्वीप-विश्व इतनी दूर तक फैले हुए हैं कि पूर्वोक्त पैमाने पर सबको पृथ्वी के बराबर गोले में निरूपित नहीं किया जा सकेगा; पृथ्वी छोटी पड़ेगी।

नीहारिका-पुंज—ऊपर कहा गया है कि नीहारिकाएँ सर्वत्र समरूप से बिखरी हुई हैं, परन्तु यह बात तभी सत्य है जब मंद और चमकीली सभी नीहारिकाओं पर विचार किया जाय। यदि केवल अपेक्षाकृत चमकीली ही नीहारिकाओं पर ध्यान दिया जाय तो पता चलता है कि कई स्थानों पर चमकीली नीहारिकाओं का घना समूह है। २५ नीहारिका-पुंजों में से प्रत्येक में १०० से अधिक नीहारिकाएँ हैं। लगभग १०० नीहारिका-पुंज ऐसे हैं जिनमें १२ से अधिक नीहारिकाएँ हैं। कई हजार पुंजों में केवल दो या तीन नीहारिकाएँ हैं, परन्तु उनमें भौतिक संबंध स्पष्ट जान पड़ता है। आकाशगंगा से आकाश दो लगभग बराबर गोलार्द्धों में बँट जाता है। यदि केवल चौदहवीं श्रेणी तक की नीहारिकाओं की ही गिनती की जाय तो उत्तरी गोलार्ध में दक्षिणी गोलार्ध की अपेक्षा लगभग डेवढ़ी नीहारिकाएँ हैं, यद्यपि २०वीं श्रेणी तक की नीहारिकाओं को भी सम्मिलित करने पर दोनों गोलार्धों में नीहारिकाओं की संख्या प्रायः बराबर है, कुछ ज्योतिषियों को इस का प्रमाण मिला था कि जिस प्रकार आकाश में ऐसी मेखला है जिसमें तारों की संख्या बहुत अधिक है और जिसे हम आकाशगंगा कहते हैं, उसी प्रकार आकाश में ऐसी भी एक मेखला है जिसमें अगांग नीहारिकाओं की संख्या बहुत अधिक है। परन्तु जब शक्तिशाली दूरदर्शकों से मंद अगांग नीहारिकाओं का भी फ़ोटोग्राफ खींचा गया और उन्हें गिना गया तब ऐसी किसी मेखला के अस्तित्व का प्रमाण नहीं मिला। संभवतः संयोगवश ही चमकीली अगांग नीहारिकाएँ कहीं अधिक, कहीं कम हैं।

स्थानीय समूह—निकटतम नीहारिकाओं की दूरियों पर ध्यान देने से ऐसा जान पड़ता है कि अपनी मदाकिनी-संस्था और १२ अन्य अगांग नीहारिकाओं का एक समूह है जो शेष नीहारिकाओं से पर्याप्त रूप से पृथक् है। इस समूह को बहुधा स्थानीय समूह (लोकल ग्रूप) कहते हैं। इस समूह में हमारी मदाकिनी-संस्था, इसकी दो साथिनियाँ, अर्थात् दोनों मेगिलन मेघ, देवयानी नीहारिका और उसकी दो छोटी साथिनियाँ, और एक पड़ोसिन—त्रिभुज (ट्राइऐंगुलम)

तारामंडल की नीहारिका—और चार अन्य वामन नीहारिकाऐं हैं। इनके अध्ययन से बहुत सी बातें ज्ञात होती हैं जो संभवत अन्य नीहारिकाओ के लिये भी सत्य होंगी। स्थानीय समूह की सात सदस्याओ का वर्णन पहले दिया जा चुका है। यहाँ वामन सदस्याओ का संक्षिप्त वर्णन दिया जायगा।

एन० जी० सी० ६८२२ और आई० सी० १६१३ दो छोटी छोटी अगाग नीहारिकाएँ हैं जो वर्गीकरण के अनुसार अनियमित नीहारिकाएँ हैं। इनमें अति दैत्य तारे भी कई एक हैं। इन दो वामन नीहारिकाओ के अतिरिक्त दक्षिणी आकाश में भट्ठी (फॉरनैक्स) और मूर्तिकार (स्कल्पटर) तारा मंडलो में भी एक-एक वामन नीहारिकाएँ हैं जो दीर्घवृत्ताकार हैं। उनमें अति दैत्य तारे नही हैं। इन वामन नीहारिकाओ की दूरी २ से ७ लाख प्रकाशवर्ष हैं और इसलिये ये हमारे स्थानीय समूह में हैं, यद्यपि इस स्थानीय समूह के अन्य सदस्यों से पूर्णतया पृथक है। इन चार वामनो में से प्रथम दो अनियमित नीहारिकाएँ है, और उनका संगठन बहुत-कुछ मैगिलन मेघो की तरह है। भट्ठी (फॉरनैक्स) वाली वामन नीहारिका निसंदेह अगाग नीहारिका है, परतु उस का संगठन गोलाकार तारा पुंज सा है, अतर इतना ही है कि वह गाग तारा पुंजो से बहुत बडा है और उसमें तारे इतने घने नही बिखरे हुये हैं जितने वे साधारणत गोलाकार तारापुंजो में रहते हैं। तारा-घनत्व में लगभग १/७५ गुने का अंतर है और व्यास में १० गुने का। मूर्तिकार (स्कल्पटर) वाली नीहारिका भट्ठी (फॉरनैक्स) वाली नीहारिका-जैसी है।

इन वामन नीहारिकाओ से पता चलता है कि आकाश में करोडो वामन नीहारिकाएँ अपेक्षाकृत पास में ही होगी, परतु अन्य नीहारिकाओ से छोटी होने के कारण वे हमको नही दिखाई पडती। सप्तर्षि, सिंह और षडाश (सेक्सटैन्स) तारा मडलो में भी वामन नीहारिकाएँ दिखाई पडती हैं जिनकी दूरी १२ लाख प्रकाशवर्ष आँकी गयी है। जैसे मैगिलन मेघ की नीहारिकाएँ हमारी मंदाकिनी-सस्या की साथिनियाँ हैं और देवयानी नीहारिका के पास वाली वामन नीहारिकाएँ देवयानी नीहारिका की साथिनियाँ हैं, संभव है उसी प्रकार सब वामन नीहारिकाएँ बडी नीहारिकाओ के पडोस ही में पाई जाती हो, परतु अभी कुछ निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। अधिक शक्तिशाली यंत्र बन रहे हैं और भविष्य में अवश्य कई नयी बातो का पता चलेगा।

कन्या-तारामडल में नीहारिका-पुंज—तरहवीं श्रेणी तक की नीहारिकाओ के फोटोग्राफो में सबसे प्रमुख नीहारिका-पुंज कन्या-तारामडल में है। इसके केंद्र का विषुवांश साढ बारह घंटा है और क्रांति $+12°$। इस नीहारिका-पुंज का अधिकांश कन्या-तारामडल में है परतु कुछ भाग बहर तक भी चला जाता है। विषुवत के समीप होने के कारण उत्तरी तथा दक्षिणी सभी वेधशालाओ से इसका अध्ययन किया गया है। फिर, आकाशगगा से कुछ दूर होने के कारण प्रकाश-शोषण भी इतना नही है कि कोई कठिनाई पडे। अपेक्षाकृत समीप होने के कारण नीहारिका-पुंज की प्रत्येक सदस्या का अध्ययन साधारण शक्ति के दूरदर्शको से भी किया सकता है।

साथ के चित्र में आकाश के एक भाग का नक्शा दिया गया है जिसमें तेरहवीं श्रेणी तक की सब नीहारिकाओं को दिखाया गया है। इस नक्शे पर दृष्टि डालते ही पता चलता है कि वस्तुतः वहाँ नीहारिका-पुंज है। यह पुंज आकाश के तीन चमकीले तारे मघा (रेग्युलस), चित्रा
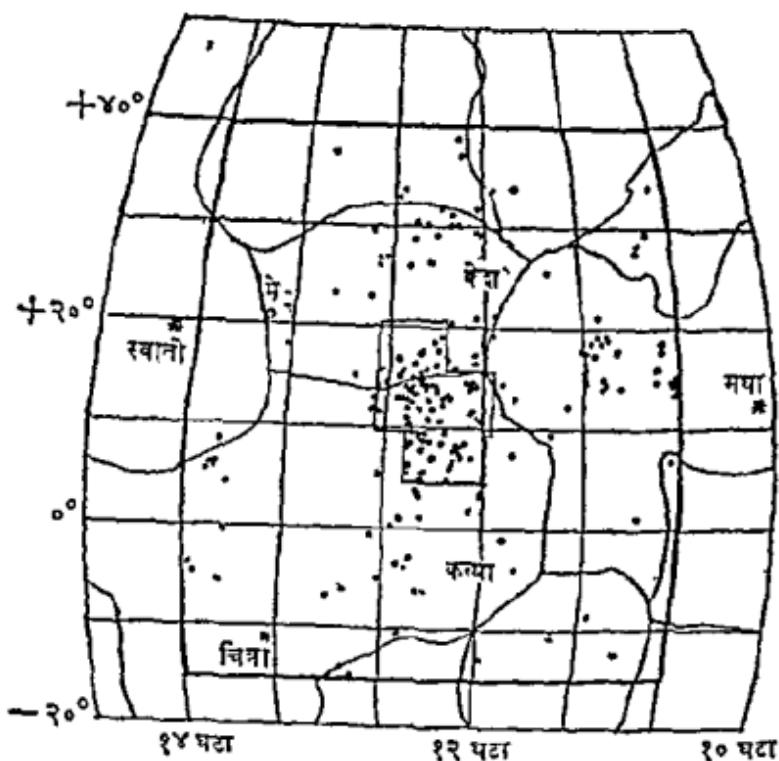
कन्या-तारामंडल में नीहारिका-पुंज।

इस चित्र में नीहारिकाओं को काले बिंदुओं से सूचित किया गया है। स्पष्ट है कि कन्या तारामंडल में नीहारिकाएँ असाधारण रूप से सघन हैं।

(स्पाइका), और स्वाती (आर्कट्यूरस) से बने त्रिभुज के केंद्र के पास हैं और इस प्रकार इसकी दिशा सुगमता से जानी जा सकती है, परंतु हम पुंज या इसकी नीहारिकाओं को देख नहीं सकते, क्योंकि अधिक दूरी के कारण नीहारिकाएँ अदृश्य हैं। केवल उनका फोटोग्राफ खींचा जा सकता है। यदि हम इस पुंज को अधिक निकट से देख सकते तो हमारे सम्मुख अनुपम दृश्य उपस्थित होता।

कन्या नीहारिका-पुंज का अध्ययन माउंट विलसन और हारवार्ड वेधशालाओं में भली भाँति हुआ है। पुंज की नीहारिकाओं में से एक चौथाई कुछ चिपटे गोले के समान है और शेष तीन चौथाई सर्पिलाकार। मैगिलन मेघों की तरह की अनियमित नीहारिकाएँ इनमें एक भी नहीं देखी गयी हैं। अधिकांश नीहारिकाएँ पूर्ण-विकसित सर्पिल नीहारिकाओं के वर्ग की हैं जिन्हें

स्की (Sc) वर्ग कहा जाता है। माउट विलसन के १०० इच वाले दूरदर्शक से इनमें से धिकाश नीहारिकाओ में पृथक्-पृथक् तारे देखे गये है। ये तारे अतिदैत्याकार जाति के है। म चमकीले तारे अभी हमारे बडे से बडे दूरदर्शको भी में दिखाई नही पडते। कुछ चिपटी लाकार नीहारिकाओ में पृथक्-पृथक् तारे नही देखे जा सके है, सभवत इसलिए कि उनमें अति-त्याकार तारे है ही नही।

इस नीहारिकापुज की कई नीहारिकाओ का दृष्टिरेखीय वेग नापा गया है। इससे ता चलता है कि पुज हमसे, लगभग ७०० मील प्रति सेकड के वेग से दूर जा रहा है। रतु जब नीहारिकाओ के वेगो पर अलग-अलग विचार किया जाता है तब पता चलता है कि ये हारिकाएँ एक दूसरे के हिसाब से भी बहुत वेग से चलती है। १५०० मील प्रति सेकड तक ा वेग भी कुछ नीहारिकाओ में मिला है। इन वेगों के आधार पर प्रत्येक नीहारिका की औसत व्यमान का भी अनुमान लगाया गया है। उत्तर आश्चर्यजनक है कि प्रत्येक नीहारिका का ौसत द्रव्यमान २ खरब सूर्यों के बराबर है। यह देखते हुए कि इन नीहारिकाओ से कुल कितना काश आता है इतना द्रव्यमान होना असभव सा जान पडता है। अधिक खोज की आवश्यकता तीत होती है। इन नीहारिकाओ के वर्णपट और रग की तुलना से प्रत्यक्ष हो जाता है कि नीहारि-ाएँ धूमिल अतरिक्ष के कारण विशेष ललछौंह नही हो गयी है।

नीहारिकाओ की सर्पिल भुजाओ की समस्या अभी पूर्णतया हल नही हुई है। पहले बताया ा चुका है कि सभवत वेग से घूमने के कारण कुछ द्रव्य छटक जाता है और वही भुजाओ का प धारण कर लेता है। परतु कन्या-नीहारिकाओ में देखा गया है कि सर्पिल और असर्पिल ीहारिकाओ की नापो में विशेष अतर नही है। इसलिए ऐसी धारणा होती है कि केंद्र से छटक र द्रव्य बाहर सभवत न निकला होगा, कदाचित् बाहरी भागो के द्रव्य के घनीभूत होने से भुजाएँ बनी होगी।

एक कठिनाई और भी है। कुछ नीहारिकाओ में भुजाएँ कुछ असाधारण होती है। उदाहरणत, एक नीहारिका में एक भुजा तो साधारण आकार की है, परन्तु दूसरी भुजा मुडकर अगूठी की तरह बद हो गई है। अभी तक कोई भी ऐसा सिद्धात नही बन सका है जो इन सब बातो को समझा सके। यह अवश्य कहा जा सकता है कि दूसरा कोई पिंड कभी आकार इस नीहारिका से भिड गया होगा जिससे भुजा टूट गई होगी, या जन्म से ही एक भुजा टूटी रही होगी, परतु इन सब बातो से सतोष नही होता। सभव है भविष्य में हमारा ज्ञान इतना बढे कि हम इन सब बातो को सतोषजनक रीति से समझा सकें।

कन्या-नीहारिका पुज की सीमा तीक्ष्ण नही है। नराश्व (सेंटॉरस) तारामडल की ओर तीस डिगरी तक कन्या-नीहारिकाओ की तरह की ही नीहारिकाएँ मिलती है। उत्तर की ओर भी कई नीहारिकाएँ कन्या-नीहारिकाओ की तरह चमकीली है। इसलिए कभी-कभी सदेह होता है कि कहीं ऐसा तो नही है कि नीहारिकाओ का एक स्थानीय बादल-सा झुड है जिसमें नीहा-

रिकाएँ अन्यत्र से अधिक घनी बसी हैं और हमारी मदाकिनी-संस्था भी उसी मेघ में एक कण-समान है? यदि यह बात है तो यह नीहारिका-समूह सभवत. किसी धुरी पर नाचता होगा। वह धुरी किधर है? हमारा वेग क्या है? इस मेघ के सदस्य सिमट रहे हैं या छिटक रहे हैं? ये सब प्रश्न उठते अवश्य हैं, परन्तु उनका उत्तर पाने का लक्षण अभी कोई नहीं दिखाई पड़ता। हाँ, यदि मनुष्य का जीवन-विस्तार दो चार सौ वर्ष होता तो ये सब बातें सुगमता से जानी जा सकती।

खोज जारी है—नीहारिकाओं पर खोज निरंतर हो ही रही है। नीहारिकाओं के फोटोग्राफ अधिकतर दो यंत्रों से लिये गये हैं। एक तो दक्षिणी अफरीका में ब्लोमफानटाइन (Bloemfontein) के पास स्थापित २४ इंच के ब्रूस दूरदर्शक से और दूसरे अमरीका के केमब्रिज शहर से २५ मील दूर पर ओकरिज में स्थापित १६ इंच के व्यास के मेटकाफ रिफ्लैक्टर से। ये दोनों यंत्र पुराने ढंग के हैं। यदि इनके ताल नवीन ढंग के होते तो संभवत और भी अच्छे फोटोग्राफ उतरते, परन्तु वे जैसे भी हैं उनसे काफी अच्छा काम हो रहा है। अवश्य ही १०० इंच वाले दूरदर्शक के समान वे अत्यंत दूर नीहारिकाओं का फोटोग्राफ नहीं खींच पाते हैं, परन्तु बड़े दूरदर्शक की तुलना में उनमें एक विशेष गुण भी है। इन दूरदर्शकों से एक बार में लगभग ३० वर्ग डिगरी का फोटोग्राफ उतर आता है, बड़े दूरदर्शकों से कुल आधा या तिहाई ही वर्ग डिगरी का फोटोग्राफ एक बार में उतरता है। इसलिए इन यंत्रों से सारे आकाश का फोटोग्राफ दो तीन वर्ष में खींचा जा सकता है। यदि बड़े दूरदर्शकों से सारे आकाश का फोटोग्राफ खींचा जाय तो सौ-सवा सौ वर्ष लगभग जायेंगे। इसलिए बड़े दूरदर्शकों से केवल कुछ क्षेत्रों के फोटोग्राफ बानगी के रूप में लिए गये हैं, या विशेष क्षेत्रों के फोटोग्राफ उनसे लिये गये हैं। ब्रूस और मेटकाफ दूरदर्शकों से साधारणत तीन घंटे का प्रकाशदर्शन(एक्सपोज़र)दिया जाता है और इतने प्रकाशदर्शन से अट्ठारहवी श्रेणी से कुछ फीके सब तारों के फोटोग्राफ उतर आते हैं। परन्तु नीहारिकाओं का चित्र तीक्ष्ण विंदु न होकर कुछ फैला-सा होता है। इस प्रकार उनका प्रकाश कुछ बँट जाता है। इसलिए केवल साढ़े सत्रहवी श्रेणी तक की नीहारिकाओं के ही फोटोग्राफ उतर पाते हैं।

फोटोग्राफ लेने का काम तो दो-तीन वर्ष में पूरा अवश्य हो जाता है, परन्तु प्लेटों की जाँच में तथा अनुसधानों में वर्षों लगते हैं।

अब नये प्रकार के श्मिट (Schmidt) दूरदर्शक बने हैं जिनमें प्रकाश पहले एक विशेष ताल से होकर बड़े नतोदर दर्पण पर पड़ता है। इन से अधिक अच्छे और अपेक्षाकृत कम समय में फोटोग्राफ लिये जा सकते हैं। अब बड़े-बड़े श्मिट दूरदर्शक बन रहे हैं और जब उन से सारे आकाश का फोटोग्राफ लिया जायगा और खोज होगी तो अवश्य नीहारिकाओं के संबंध में हमें बहुत-सी नयी बातें ज्ञात होगी।

परन्तु वर्तमान दूरदर्शक भी कम शक्तिशाली नहीं है। स्मरण रखना चाहिए कि माउंट विलसन के १०० इंच वाले दूरदर्शक से जिन अतिमंद नीहारिकाओं का फोटोग्राफ लिया गया है

वे हम से लगभग $१०^{११}$ अर्थात्

१०,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००० मील

पर है। उनसे पृथ्वी तक प्रकाश के पहुँचने में डेढ करोड वर्ष से अधिक समय लगा है।

नीहारिकाओं का घूमना—सर्पिल नीहारिकाओ का फोटोग्राफ देखते ही ऐसा जान पडता है कि वे घूमती होगी। जिन नीहारिकाओ के धरातल में पृथ्वी पडती है और जो इस कारण से हमें बहुत चिपटी या प्राय एक रेखा-सी दिखायी पडती है उन के दोनो छोरो का वेग, दृष्टिरेखा में, वर्णपट से ज्ञात किया जा सकता है। वेग से तुरत पता चलता है कि नीहारिका अपने अक्ष पर घूम रही है। कई नीहारिकाओ के केंद्रीय भाग भुजाओ के धरातल में घूमते हुए पाये गये है। प्रकाश कम होने के कारण केवल कुछ ही नीहारिकाओ के घूमने की जाँच की जा सकी है। देवयानी और त्रिभुज तारामडलों की नीहारिकाओ के घूमने का पक्का प्रमाण मिला है। देवयानी नीहारिका प्राय इस प्रकार घूमती है जैसे वह ठोस हो, अर्थात् बाहर के भाग केंद्रीय भागो की अपेक्षा अधिक वेग से चलते हैं। इस नीहारिका का एक चक्रकाल लगभग ९ करोड वर्ष का है, त्रिभुज तारामडल की नीहारिका का केंद्रीय भाग ठोस की तरह घूमता है, परतु दूरस्थ भाग कम वेग से घूमते है।

घूमने के वेग जानने से नीहारिकाओ के द्रव्यमान का भी अनुमान किया जा सकता है। गणना से पता चलता है कि देवयानी-नीहारिका का द्रव्यमान हमारे सूर्य के द्रव्यमान का ९५ अरब गुना होगा। विश्वास किया जाता है कि नीहारिकाओ के औसत द्रव्यमान से यह बहुत अधिक है। त्रिभुज तारामडल वाली नीहारिका का द्रव्यमान २ अरब सूर्यों के बराबर है। सभवत अन्य नीहारिकाओ का द्रव्यमान इसी तरह का होगा। अपनी मदाकिनी-सस्था का द्रव्यमान अन्य रीतियो से आँका गया है और अनुमान किया गया है कि कुल द्रव्यमान लगभग २ खरब सूर्यों के बराबर होगा। परतु द्रव्यमानो के अनुमान में कई बातें अनिश्चित रहती है। इसलिए द्रव्यमान बतायी गयी मात्रा के आधे से लेकर दुगुने तक हो सकता है। स्पष्ट है कि देवयानी-नीहारिका और हमारी मदाकिनी-सस्था के द्रव्यमान मोटे हिसाब से लगभग बराबर है।

सर्पिल नीहारिकाएँ किस दिशा में घूमती है? इस प्रश्न के दो उलटे उत्तर दो ज्योतिषियो को मिले। एक का कहना था कि सर्पिल नीहारिकाएँ इस प्रकार घूमती है कि पूँछ की नोक पीछे-पीछे चलती है, अर्थात्, यदि सर्पिलाकार भुजाओ की तुलना घडी की कमानी से की जाय तो नीहारिकाएँ इस प्रकार घूमती है कि कमानी कस उठेगी। दूसरे ज्योतिषी ने एक नीहारिका को उल्टी दिशा में घूमते हुए पाया। परतु बहुत छान-बीन के बाद सिद्ध हुआ कि बात ऐसी नही है। सब सर्पिल नीहारिकाएँ इस प्रकार घूमती है कि उन की भुजाएँ उससे सिमटती हुई जान पडेंगी। इस सबध में केवल ११ नीहारिकाओ का अध्ययन हो सका है। नीहारिकाओ के अत्यत दूर होने के कारण और घूमने का चक्रकाल अत्यत लम्बा होने के कारण इन सब नीहारिकाओं के बारे में ठीक-ठीक निर्णय नही हो सका है। परतु जिन जिन नीहारिकाओ में घूमन

का प्रमाण स्पष्टता से मिला है उन सब में यही देखा गया है कि घूमने की दिशा ऐसी है जिससे भुजाएँ केंद्र पर लिपटती हुई जान पड़ेंगी।

तारे कैसे चमकते है—लोग कहते है कि सूरज आग का गोला है; परन्तु गणना से पता चलता है कि यदि सूर्य का कुल द्रव्य पत्थर का कोयला और उसके जलने भर ऑक्सिजन होता तो भी सूर्य आज से न जाने कब जल कर मिट गया होता। परन्तु हम पुरावनस्पति-विज्ञान (पैलियो-बॉटैनी) से जानते है कि उन पत्थरों की आयु जिन में पौधों या जंतुओं के अवशेष मिलते है, एक अरब वर्ष है। अब ध्यान देने योग्य बात यह है कि पृथ्वी पर सब प्रकार के जीव खौलते पानी के तापक्रम पर मर जाते है और बर्फ से अधिक ठंडे तापक्रम पर भी जीवित नहीं रह सकते। इसलिए आज से १ अरब वर्ष पहले भी हमारा सूर्य बहुत-कुछ आज-जैसा रहा होगा; न वह इतना गरम रहा होगा कि उस की आंच से पृथ्वी पर पानी खौलने लगता रहा होगा; न वह इतना ठंडा रहा होगा कि पृथ्वी बर्फ की तरह ठंडी रही होगी। परन्तु यदि कोयला जलने से सूर्य में ताप उत्पन्न होता रहा होगा तो जितनी गर्मी सूर्य से निकलती है उतनी के लिए सूर्य को कुछ हजार वर्षों में ही भस्म हो जाना चाहिए था। इसलिए सूर्य में अग्नि होने का सिद्धांत अवश्य ही गलत है। लगभग सौ वर्ष हुए जरमन वैज्ञानिक हेल्महोल्ट्स (Helmholtz) ने सुझाया कि सूर्य में गरमी संकुचन के कारण उत्पन्न होती है। उसने सिद्ध किया कि यदि सूर्य की त्रिज्या प्रतिवर्ष १४० फुट घटती जाय तो इतनी गरमी उत्पन्न होती रहेगी कि सूर्य ठंडा न होने पाए। उस समय तो सिद्धांत ठीक जँचा, परन्तु जब इसकी गणना की गयी कि अनंत दूरी से संकुचित होकर सूर्य वर्तमान अवस्था में कितने समय में पहुँचा होगा और यह मान लिया गया कि संकुचन का वेग सदा इतना था कि सूर्य कभी भी वर्तमान अवस्था से बहुत अधिक ठंडा या गरम नहीं था, तो पता चला कि सूर्य इस प्रकार कुल ५ करोड़ वर्ष ही चमकता रहा होगा। इस सिद्धांत के अनुसार आज से दो करोड़ वर्ष पहले सूर्य इतना बड़ा रहा होगा कि वह पृथ्वी को छूता रहा होगा। पुरा-वनस्पति-विज्ञान से प्राप्त पृथ्वी की आयु की तुलना इस आयु से करने पर तुरत पता चलता है कि संकुचन-सिद्धांत कभी ठीक हो नहीं सकता।

इधर ज्योतिषी इस उधेड़बुन में पड़े रहे कि सूर्य ठंडा क्यों नहीं हो जाता; उधर प्रसिद्ध आधुनिक वैज्ञानिक आइनस्टाइन ने अपना सापेक्षवाद प्रकाशित किया। इस सिद्धांत से बहुत-सी बातें जो अन्य किसी रीति से समझ में नहीं आती थीं, समझ में आने लगीं। एक परिणाम इस सिद्धांत का यह भी है कि द्रव्य और शक्ति मौलिकतः एक है। द्रव्य को शक्ति में परिवर्तन किया जा सकता है और जब ऐसा किया जायगा तो थोड़े-से द्रव्य से महान् शक्ति उत्पन्न होगी। ऐटम बम का बनना इस सिद्धांत का प्रत्यक्ष प्रमाण है। यदि सूर्य में लगभग ४२ लाख टन द्रव्य प्रति सेकंड शक्ति में परिवर्तित होता हो तो सूर्य ठंडा न होने पायेगा। प्रथम दृष्टि में तो यह जान पड़ता है कि ४२ लाख टन द्रव्य बहुत होता है और प्रति सेकंड इतना द्रव्य नष्ट होता रहेगा तो सूर्य शीघ्र ही समाप्त हो जायगा; परन्तु बात ऐसी नहीं है। सूर्य का कुल द्रव्यमान इतना अधिक है कि प्रति सेकंड ४२ लाख टन खर्च होने पर १५ अरब वर्षों में कुल द्रव्य का एक हजारवें भाग से कुछ

कम ही खर्च होगा। इसलिए बहुत सभव है कि सूर्य में गरमो इसी प्रकार उत्पन्न होती हो। या यो कहिए कि सूर्य पर प्रति सेकड कई करोड़ ऐटम बम बनते और छूटते रहते हैं।

परतु एक कठिनाई के हल होते हो दूसरी यह उपस्थित होती है कि सूर्य अथवा अन्य तारो में द्रव्य का शक्ति में परिवर्तन होता ही क्यो है; वही परिवर्तन पृथ्वी पर क्यो नही होता रहता? इसकी भी खोज की गयी है। वैज्ञानिको का विचार है कि यह सूर्य के भीषण तापक्रम के कारण होता है। स्ट्रोमग्रेन (Stromgren) ने गणना से पता लगाया है कि सूर्य के केंद्र का तापक्रम लगभग २ करोड डिगरी सेंटीग्रेड होगा। सूर्य का केंद्र गैसीय होगा, परतु वहाँ घनत्व पारे का आठगुना होगा। वहाँ पर निपीड (प्रेशर) हमारे वायुमडल के निपीड का १० अरब गुना होगा। ऐसी अकल्पनीय परिस्थिति में सभी ऐटम (अणु) टूटने लगते हैं। सभी ऐटमो के भीतर प्रोटन और नाभियाँ (न्यूक्लिआई) रहती है और उनके नवीन सगठन से नवीन ऐटम बनते हैं। कौन-सा तत्व किस तत्व में परिवर्तित होगा, यह इस पर निर्भर है कि तापक्रम, निपीड आदि क्या हैं।

सापेक्षवाद और प्रोटन आदि का सिद्धात अभी बहुत नया है। प्रति दिन नवीन बातो का पता चलता रहता है और सभव है किसी दिन ऐसी बातो का पता चले कि इन सब सिद्धातो को बदलना पडे; परतु इस समय तारो की चमक का रहस्य यो समझाया जा सकता है कि प्रारभ में तारे अति विस्तृत और अति क्षीण गैस के विशालकाय गोले होते हैं। गुरुत्वाकर्षण के कारण वे सिमटने लगते हैं, और, जैसा हेल्महोल्ट्स का सिद्धात बताता है, उनमें गरमी उत्पन्न होने लगती है। जब तापक्रम लगभग ४ लाख डिगरी सेंटीग्रेड हो जाता है तो भारी हाइड्रोजन (हेवी हाइड्रोजन) और प्रोटनो में प्रतिक्रिया होने लगती है। जब तक भारी हाइड्रोजन रहता है तब तक यह क्रिया जारी रहती है और तारे का सकुचन रुका रहता है। सब भारी हाइड्रोजन के समाप्त हो जाने पर तारा गुरुत्वाकर्षण के कारण फिर सकुचित होने लगता है। जब तापक्रम २० लाख डिगरी हो जाता है तब लिथियम के ऐटम टूटते हैं, फिर बेरिलियम और बोरन के। इन सब के चुक जाने पर तारा फिर सकुचित होने लगता है और तापक्रम बढ़ने लगता है। जब तापक्रम २ करोड डिगरी हो जाता है तो कारबन के ऐटमो की पारी आती है। इसी प्रकार कभी सकुचन से, कभी ऐटमो के टूटने से, तापक्रम स्थिर रहता है या कुछ बढता जाता है।

जब सब ऐसे पदार्थ समाप्त हो जाते हैं जिनके ऐटमो के टूटने से ताप उत्पन्न हो सकता है और सकुचित होते-होते तारा ऐसा सघन हो जाता है कि अब और सकुचन नही हो सकता, तो क्या होता है? सिद्धात बताता है कि तब तारे ठढे होने लगते हैं। बामन तारे वे हैं जो महत्तम तापक्रम और घनत्व प्राय प्राप्त कर चुके हैं। वे अब धीरे-धीरे ठढे हो जायँगे और अन्त में अदृश्य हो जायँगे। लगभग ४० ऐसे बामन तारे हमें ज्ञात हैं जो बहुत ही अधिक घनत्व के हैं। कुछ का घनत्व तो पानी से १ लाख गुना अधिक है। इनमें सभवत सब ऐटम टूट-फूट गये हैं और एलेक्ट्रन और नाभियाँ बहुत कम स्थान में ठसाठस भर गयी हैं।

हमारे सूर्य का भविष्य क्या है ? यह भी इस सिद्धांत पर बताया जा सकता है। गुलिवर की यात्राओं के लेखक ने ज्योतिषियों की खिल्ली उड़ाते हुए लिखा है कि एक बार गुलिवर लपूटा देश में पहुँचा जहाँ यूरोप के प्रान्तों की अपेक्षा ज्योतिष अधिक उन्नत अवस्था में था। गुलिवर ने देखा कि वहाँ के ज्योतिषियों का मत था कि "सूर्य अपनी रश्मियों को प्रति दिन खर्च करता है, परन्तु उसे कोई सोता नहीं मिलता, इसलिए अन्त में इसका पूर्णतया क्षय हो जायगा और इसका नामो-निशान भी न रहेगा।" * * * "उन्हें बराबर इन सब आसन्न संकटों और इसी प्रकार की अन्य आशंकाओं से इतना डर लगा करता है कि वे न तो अपने बिस्तर पर सुख से सो सकते हैं और न तो उन्हें जीवन के सामान्य आनंद उत्सवों में कोई रुचि रहती है। प्रातःकाल जब उनकी भेंट किसी मित्र से होती है तो पहला प्रश्न सूर्य के स्वास्थ्य के विषय में होता है, 'उदय या अस्त होते समय वह कैसा था ?' "

परन्तु आधुनिक सिद्धांत के अनुसार सूर्य में अभी पर्याप्त द्रव्य है जिससे वह अधिक तप्त हो सकता है। संभवतः वहाँ का हाइड्रोजन धीरे-धीरे हीलियम में परिवर्तित होगा और इससे तापक्रम धीरे-धीरे बढ़ेगा। सूर्य तब अधिक चमकीला और अधिक गरम हो जायगा। इससे पृथ्वी भी गरम हो जायगी। एक-एक करोड़ वर्ष में पृथ्वी का तापक्रम लगभग एक डिगरी बढ़ेगा। समय पाकर पृथ्वी का सब जल सूख जायगा और यहाँ जीवन का लोप हो जायगा। आठ-दस अरब वर्षों में सूर्य महत्तम तापक्रम और चमक पर पहुँचेगा और तब उसकी वास्तविक चमक लुब्धक (सिरियस) नामक तारे के वर्तमान वास्तविक चमक से भी अधिक हो जायगी। फिर सूर्य की चमक धीरे-धीरे घटेगी। यह श्वेत वामन जान पड़ेगा और दस पंद्रह करोड़ वर्षों में ठंढा हो जायगा।

पञ्चम अध्याय

उत्पत्ति

अगाँग नीहारिकाएँ हम से दूर जा रही हैं—अनुभव की बात है कि जब कोई बाइसिकल पर तेजी से हमारी ओर आता है और हमारी बगल से होता हुआ निकल जाता है तो घंटी के स्वर में अतर पड जाता है। कारण यह है कि जब घंटी हमारी ओर आती रहती है तब हमारे पास उससे प्रति सेकड ध्वनि की अधिक लहरें पहुँचती हैं। जब घंटी हम से दूर जाती रहती है तब प्रति सेकंड हमारे पास कम लहरें पहुँचती है। लहरों की सख्या पर ही ध्वनि का सुर निर्भर है। इसी लिए जब घंटी हमारी ओर आती रहती है तब उसका स्वर तीव्र जान पडता है, जब घंटी दूर जाती रहती है तब उसका स्वर कोमल जान पडता है। वस्तुत स्वर में कितना अतर पडा इसे नाप कर हम घंटी का वेग जान सकते हैं। स्वर के अतर और ध्वनि उत्पादक के वेग का सबध बताने वाला नियम ही डॉपलर सिद्धात (Doppler's principle) कहलाता है।

जो बात ध्वनि के लिए सत्य है वही प्रकाश के लिए भी सत्य है, प्रकाश-उत्पादक के वेग के कारण प्रकाश का रग बदल जाता है। पहले बताया जा चुका है कि तारों के वर्णपटों में काली रेखाएँ भी होती हैं। प्रकाश के वेग के अनुसार ये रेखाएँ अपने स्थान से हट जाती हैं। यदि ये रेखाएँ लाल की ओर हटें तो समझना चाहिए कि प्रकाश का उद्‌गम स्थान हमसे दूर जा रहा है, यदि ये रेखाएँ उलटी दिशा में विचलित हो तो यह परिणाम निकलता है कि उद्‌गम-स्थान हमारी ओर आ रहा है। उद्‌गम-स्थान का वेग जितना ही अधिक होगा, काली रेखाएँ अपने स्थान से उतनी ही दूर अधिक हटेगी। इसलिए विचलन को नापने से उद्‌गम स्थान का वेग दृष्टिरेखा में जाना जा सकता है।

नीहारिकाओ में चमकीले तारे भी हैं जिन का वर्णपट खींचा जा सकता है और उनमें काली रेखाओ के विचलन का अध्ययन किया जा सकता है। देखा गया है कि सब नीहारिकाएँ हम से दूर भाग रही हैं और नीहारिका जितनी ही दूर है वह उतना ही अधिक वेग से हम से दूर भागती है। २० लाख प्रकाशवर्ष पर स्थित नीहारिकाएँ २०० मील प्रति सेकड के वेग से दूर हो रही हैं, १ करोड प्रकाशवर्ष पर स्थित नीहारिकाएँ १००० मील प्रति सेकड के वेग से दूर हो रही हैं। जब तक सौ, दो सौ, मील प्रति सेकड के वेग से अधिक वेग का पता नहीं लगा था तब तक तो कोई सदेह नहीं हुआ, परतु जब बडे-से बडे दूरदर्शकों से अत्यत दूरस्थ नीहारिकाओ के तारों के वर्णपटों का फोटोग्राफ लिया गया और २० हजार मील प्रति सेकड के वेग से भागती हुई नीहारिकाएँ मिली तब सदेह होने लगा कि कहीं कोई भूल तो नहीं हो रही है। अभी तक निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि असली बात क्या है, परतु अधिकाश ज्योतिषी समझते हैं कि वर्णपट की काली रेखाएँ उद्‌गम स्थान के वेग के अतिरिक्त सभवत्‌ अन्य कारणों से भी विचलित हो सकती हैं। जिस प्रकाश को उद्‌गम-स्थान से चल कर हमारे पास आने में कई करोड

वर्ष लगे हैं उसमें कुछ अज्ञात गड़बड़ी हो जाने में अचरज ही क्या है । फिर, इतनी मंद नीहारिकाओं के लिए अधिक शक्तिशाली दूरदर्शकों की आवश्यकता है । भविष्य ही बता सकेगा कि सच्चा कारण क्या है, परंतु यदि नीहारिकाएँ इस प्रकार भाग रही हैं कि जो जितनी ही दूर है वह उतनी ही अधिक वेगवती है तो अवश्य नीहारिकाओं की दुनिया फैल रही है ; हमारा विश्व प्रसरणशील है । आइनस्टाइन के सापेक्षवाद से यह भी परिणाम निकलता है कि दूरस्थ नीहारिकाओं को हम से दूर भागना चाहिए । इसलिए यह मानने में कि विश्व प्रसरणशील है कुछ सहायता ही मिलती है । परंतु सापेक्षवाद से यह भी परिणाम निकाला जा सकता है कि विश्व बारी-बारी से सिकुड़ेगा और फैलेगा । असल बात यह है कि हम अभी कई बातें ठीक-ठीक नहीं जानते और कल्पना से कुछ बातें ठीक मान कर उन पर सापेक्षवाद का प्रयोग करते हैं । इसीलिए परिणाम भी विश्वसनीय नहीं निकलता ।

हारवार्ड वेधशाला के हारलो शेपली (Harlow Shapley) का विश्वास है कि विश्व वस्तुतः फैल रहा है । विश्व का व्यास सवा अरब वर्ष में दुगुना हो जायगा । यह तो भविष्य की बात है । यदि भूतकाल में भी नीहारिकाओं का यही वेग रहा होगा तो आज से लगभग दो अरब वर्ष पहले सब नीहारिकाएँ पास-पास रही होंगी । यदि हमारा यह सिद्धांत ठीक है तो हम मान सकते हैं कि विश्व की उत्पत्ति उसी समय हुई होगी । उस समय तारे एक दूसरे से भिड़ भी जाया करते रहे होंगे । उन्हीं के टूटे-फूटे खंडों से संभवतः पृथ्वी तथा अन्य ग्रह बने होंगे । इस प्रकार हमें विश्व की उत्पत्ति के लिए एक सिद्धांत और विश्व की आयु जानने के लिये एक मार्ग मिल जाता है ।

पृथ्वी पर के पत्थरों के अध्ययन से भूगर्भ वैज्ञानिक बताते हैं कि हमारे पुराने-से-पुराने पत्थर अरब वर्ष पुराने होंगे । इस प्रकार भूगर्भ विज्ञान से भी विश्व की आयु के लगभग दो अरब वर्ष होने के सिद्धांत का समर्थन होता है । फिर, तारापुंजों से भी हमारी मंदाकिनी-संस्था की आयु लगभग इतनी ही निकलती है ।

परंतु सब कुछ होते हुए भी यह विश्वास करने को जी नहीं चाहता कि विश्व की आयु वही है जो पृथ्वी के पत्थरों की है । इन सिद्धांतों की नींव ऐसी पक्की नहीं पड़ी है कि उनके सब परिणामों को हम निश्चित हो कर मान लें, और फिर यह प्रश्न तो बिना उत्तर के रह ही जाता है कि जब सब नीहारिकाएँ साथ थीं तो क्या हुआ कि वे दूर भागने लगीं । कोई भीषण विस्फोट हुआ होगा, परंतु ऐसा विस्फोट क्यों हुआ ? इसके विपरीत, एडिंगटन तथा अनेक वैज्ञानिकों का विचार है कि आरंभ में सर्वत्र प्रायः एकरूप से द्रव्य फैला रहा होगा और विश्व की उत्पत्ति उसी से हुई होगी ।

विश्व की उत्पत्ति—गुरुत्वाकर्षण का पता न्यूटन (Newton) ने लगाया । न्यूटन बहुत दिनों से इस प्रश्न पर विचार कर रहा था कि चंद्रमा, पृथ्वी, तथा अन्य ग्रह क्यों वृत्ताकार पथों में चलते हैं ; सरल रेखा में वे क्यों नहीं चलते । कहा जाता है कि एक दिन सेब के पेड़ से सेब को टपकते देखकर उसे यह बात सूझी कि जैसे पृथ्वी सेब को अपनी ओर खींचती

हैं उसी प्रकार विश्व के सभी पिंड अन्य पिंडों को अपनी ओर खीचते हैं। पीछे, गणित द्वारा उसने सिद्ध किया कि यही खिचाव, जिसे गुरुत्वाकर्षण कहते हैं, चद्रमा को वृत्ताकार मार्ग में चलाकर पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने के लिए बाध्य करता है। यही शक्ति पृथ्वी को सूर्य के चारो ओर घूमने के लिए बाध्य करती है। न्यूटन का विचार था कि आरभ में द्रव्य अनत दूरी तक सम रूप से बिखरा हुआ था और गुरुत्वाकर्षण के कारण स्थान-स्थान पर सिमट गया और इस प्रकार विविध पिंड (ग्रह और तारे) बन गये। न्यूटन ने यह विचार स्पष्ट रूप से सन् १६९२ में एक पत्र में प्रकट किया था। लगभग ६० वर्ष पीछे दार्शनिक कैंट (Kant) ने भी यही सिद्धात प्रस्तुत किया। उसका विचार था कि जिस प्रकार निशाने पर गोली के आघात से गोली गरम हो जाती है उसी प्रकार केंद्रीय पिंडो पर नवीन द्रव्य के आ गिरने से द्रव्य इतना गरम हो जाता है कि उसमें चमक उत्पन्न हो जाती है। तारे इसी प्रकार उत्पन्न हुए होगे। कैंट की यह भी धारणा थी कि कणो के आघात से पिंड घूमने लगे। परतु आधुनिक विज्ञान के मत से यह बात असभव है। आघात से ताप अवश्य उत्पन्न होना है, घूमना नही। यदि आरभ में पिंड घूमता रहा हो तो सकुचित होने पर वह अधिक वेग से घूमने लगेगा, परतु यदि आरभ में वह न घूमता रहा हो तो केवल सकुचित होने से उसमें घूमने की योग्यता नही आ जायगी। कैंट के सिद्धात से मिलता-जुलता, परतु गणित के दृष्टिकोण से उससे कही अच्छा, एक नवीन सिद्धात महान् गणितज्ञ लाप्लास (Laplace) ने उपस्थित किया। इसे नीहारिका-सिद्धात (नेब्युलर हाइपॉथेसिस) कहते हैं। यह लगभग १०० वर्षों तक निर्दोष माना गया।

लाप्लास का नीहारिका सिद्धांत—लाप्लास ने कैंट के सिद्धात से लाभ उठाया हो, ऐसा नही जान पडता। सभवत उसने स्वतत्र रूप से अपना सिद्धात बनाया। यह सिद्धात १७९६ में प्रकाशित हुआ। लाप्लास का मत था कि आरभ में कोई बडी-सी नीहारिका थी, जो अपनी धुरी पर नाच रही थी। उसका विचार था कि यह नीहारिका अत्यत तप्त थी और विकिरण के कारण जैसे-जैसे यह ठडी हुई तैसे तैसे यह छोटी होती गयी। छोटी होने के कारण यह अधिक वेग से नाचने लगी, क्योकि गति सिद्धात बताता है कि कोणीय आवेग (ऐंगुलर मोमेंटम) का नाश नही हो सकता। लाप्लास ने सोचा कि इस प्रकार नीहारिका क्रमानुसार अधिकाधिक वेग से नाचने लगी। *गणित बताता है कि तरल या गैसीय गोल पिंड नाचते रहने पर गोल नही रह सकता।* वह चिपटा हो जायगा। उसकी आकृति नारगी के समान हो जायगी जिसे गणित में गोलाभ (स्फेरॉयड) कहते हैं। पृथ्वी की आकृति भी गोलाभ है और कारण यही जान पडता है कि जब पृथ्वी अधिक तप्त और सभवत तरल या नरम थी उस समय नाचते रहने के कारण पृथ्वी का ऐसा रूप हो गया होगा। सभी अन्य ग्रहो का रूप भी गोलाभ है। यदि पृथ्वी आज अपने अक्ष पर नाचना बन्द कर दे तो समुद्र का जल पूर्णतया गोल रूप धारण कर लेगा। इस समय उसका रूप गोलाभ है। भूमध्य रेखा पर पृथ्वी के केंद्र से पानी की सतह अधिक दूर है और ध्रुवो के पास कम दूर। ऐसा इसी कारण है कि भूमध्य रेखा के पास जल अधिक बल से छिटक जाना चाहता है क्योकि वह अक्ष से अधिक दूरी पर है। यदि पृथ्वी पर्याप्त अधिक वेग से नाचने लगे तो यह पानी अवश्य छटक कर दूर चला जायगा। नाचते हुए पिंड में अक्ष से द्रव्य के दूर भाग के

भागने की प्रवृति को समझने के लिए देखें कि कारखानों में चीनी के रवों से जल दूर करने के लिए छिद्रमय बरतन में गीली चीनी को रख कर उसे जोर से नचाया जाता है, और मक्खन तथा दूध को अलग करने के लिए भी ऐसी ही मशीनों का प्रयोग किया जाता है जिसमें दूध वेग से नाचने लगता है।

लाप्लास की धारणा थी कि जब नीहारिका वेग से नाचने लगी तो इसमें से पदार्थ छटका और वही केंद्रीभूत होकर ग्रहों में परिवर्तित हो गया। यही कारण है कि सभी ग्रह सूर्यमध्य रेखा के धरातल में हैं। लाप्लास का विचार था कि जैसे सूर्य से ग्रह बने उसी प्रकार ग्रहों से उपग्रह बने। बहुत दिनों तक यह सिद्धांत ठीक माना जाता था, परंतु अब वेध तथा गणना से कई बातों का पता चला है जो इस सिद्धांत के प्रतिकूल पड़ती हैं। लाप्लास का सिद्धांत गणित के दृष्टिकोण से ठीक है, परंतु सूर्य और ग्रहों पर ठीक नहीं बैठता। इसलिए स्वीकार करना पड़ता है कि कम-से-कम सौर-जगत् की (अर्थात् सूर्य तथा ग्रहों की) उत्पत्ति लाप्लास सिद्धांत के अनुसार नहीं हुई है। परंतु इस सिद्धांत के अनुसार ब्रह्मांडों की उत्पत्ति, अर्थात् हमारी मंदाकिनी-सरीखा तथा अगाध नीहारिकाओं की उत्पत्ति, अधिक संभव है।

अपने अक्ष पर नाचते हुए पिंड का रूप।

वेग शून्य रहने पर पिंड गोलाकार रहता है। जैसे-जैसे वेग बढ़ता है पिंड चिपटा होता जाता है, अंत में उस से द्रव्य छटकने लगता है।

ऊपर इस पर विचार किया गया है कि नाचते रहने पर तरल या गैसीय पिंड गोलाभ रूप धारण कर लेता है। आधुनिक गणित बताता है कि यदि अधिकतर द्रव्य केंद्र के पास हो तो नाचने का वेग बढ़ने पर पिंड की आकृति गोलाभ न रह जायगी। इसका मध्य भाग अधिक दूर तक विस्तृत हो जायगा और पिंड बहुत चिपटा हो जायगा। वस्तुतः पिंड की आकृति फूली हुई रोटी के समान हो जायगी। मध्यरेखा नुकीली रहेगी, गोलाभ के मध्य भाग के समान वह अतीक्ष्ण नहीं रहेगी। गणित बताता है कि घूमने के वेग में अधिक वृद्धि होने पर मध्यरेखा से द्रव्य छिटकने लगेगा। पिंड अब इतने वेग से नाच रहा है कि छटक जाने की प्रवृत्ति वहाँ की आकर्षण शक्ति से अधिक है। इसलिए द्रव्य छटकता जाता है। अब पिंड के नाचने का वेग चाहे कितना भी बढ़े, पिंड की आकृति नहीं बदलती, केवल अधिकाधिक द्रव्य घटता जाता है। इन्हीं
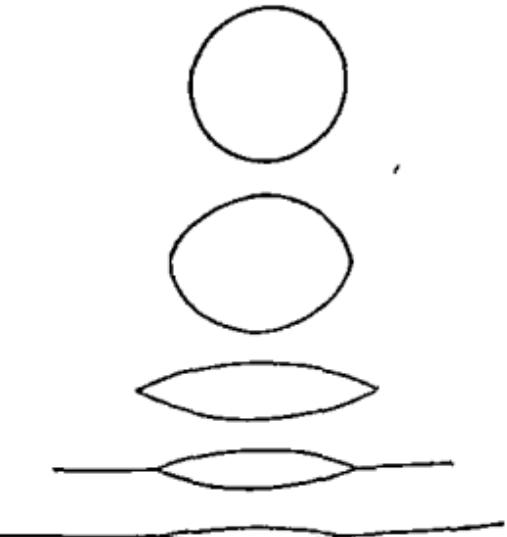
परिणामो के आधार पर सर जेम्स जीन्स (Jeans) ने अपना सिद्धात बनाया, जिसका विवरण नीचे दिया जाता है।

जीन्स का सिद्धांत—जीन्स ने न्यूटन की तरह यह माना कि आरभ में द्रव्य बहुत दूर तक, प्राय अनत दूर तक, सम रूप से, फैला हुआ था। जीन्स ने गणित द्वारा यह खोज की कि इस प्रकार बिखरे द्रव्य से यदि पिंड बनेंगे तो कितने बडे-बडे और कितनी दूर-दूर पर। जीन्स ने पहले इसकी गणना की कि यदि ऐसे माध्यम में लहरें उठें तो उनकी लहर-लबाई क्या होगी, लहरें कितनी बडी रहेंगी तो द्रव्य कही सिमट जायगा, कही फट जायगा; द्रव्य का घनत्व क्या रहा होगा, तापक्रम क्या रहा होगा, इत्यादि। हबल (Hubble) की गणनाओं से यह ज्ञात है कि यदि अतरिक्ष में सब तारो और नीहारिकाओ का द्रव्य पीस कर इस प्रकार बिखेर दिया जाय कि सब जगह घनत्व बराबर हो जाय तो प्रति घन इच १ ग्राम (लगभग १ माशा) का १०^{३३}वाँ भाग द्रव्य होगा। १०^{३३} का अर्थ है कि १ की दाहिनी ओर ३२ शून्य लिखे जायें। दूसरे शब्दो में १००० घन गज में लगभग एक अणु द्रव्य होगा। ऐसे द्रव्य पर गणित लगाने से यह परिणाम निकलता है कि जब द्रव्य घनीभूत होगा तो तारो से कही भारी (करोड, दस करोड गुना भारी) पिंड बनेंगे। इसलिए अनुमान किया जाता है कि आरभ में तारे न बने होंगे, नीहारिकाएँ बनी होंगी।

नीहारिकाओ के विकास पर पहले विचार किया जा चुका है, इसलिए ये बातें यहाँ दुहराई न जायेंगी। नीहारिकाओ के फोटोग्राफो में गोल और प्राय गोल से लेकर चिपटी गोलाभ तथा धारदार मध्यरेखा वाली नीहारिकाएँ सभी मिलती है। केंद्रीय गोल या गोलाभ भाग को घेरे हुए जो पदार्थ रहता है उसकी मोटाई बहुत कम प्रतीत होती है। इन सब बातो से विश्वास दृढ हो जाता है कि जीन्स की कल्पना के अनुसार ही नीहारिकाओ का जन्म हुआ है। जीन्स का कहना है कि जैसे हमारे वायुमडल में पवन बहा करता है, उसी प्रकार हमारे सर्वत्र बिखरे प्रारभिक द्रव्य में भी कही धीरे, कही प्रचड वेग से पवन बहता रहा होगा, उसमें आँधी आती रही होगी, बवडर उठते रहे होगे। इसी से पृथक् पृथक् नीहारिकाओ में चक्कर किसी में कम किसी में अधिक उत्पन्न होगया होगा।

तारो की उत्पत्ति—जीन्स ने अनुमान किया है कि वेग बढने पर नीहारिकाओ से जो द्रव्य छटका होगा उसका घनत्व प्राथमिक द्रव्य के घनत्व से १० अरब गुना अधिक रहा होगा, और इसलिए लहरो के तरग-दैर्घ्य पहले की अपेक्षा छोटे रहे होगे। गणना से पता चलता है कि ऐसे पदार्थ से जो पिंड बने होगे उनका द्रव्यमान तारो के द्रव्यमान के बराबर रहा होगा। इसलिए अब ज्योतिषियो की धारणा है कि तारे सर्पिल नीहारिकाओ की भुजाओ में उत्पन्न होते है। वास्तविक नीहारिकाओ की भुजाओ में तारो का पाया जाना इस बात का समर्थन करता है।

तारायुग्मों की उत्पत्ति—तारो के जन्म तक तो लाप्लास और जीन्स के सिद्धान्तो में विशेष अतर नही है। जीन्स ने गणित मे अधिक सहायता ली है, लाप्लास ने कई बातो को केवल कल्पना

पर ही आश्रित छोड़ दिया था। परन्तु सूर्य से ग्रहों की उत्पत्ति कैसे हुई इस पर जीन्स का मत सर्वथा विभिन्न है।

जीन्स का कहना है कि जन्म के बाद तारा संकुचित होता चला जाता है और जब तक उस का केंद्र तरलों के समान घना नहीं हो जाता, तब तक छोटे हो जाने के अतिरिक्त उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता। यदि कुछ पदार्थ छटकता भी है तो वह घनीभूत नहीं हो पाता, ठीक वैसे ही जैसे रबड़ के गुब्बारे से निकलने पर गैस घनीभूत नहीं होती। घनीभूत होने के लिये बहुत द्रव्य चाहिए। तभी आकर्षण-शक्ति इतनी हो पाती है कि उस गैस की प्रसरणशीलता को दबा सके। जब तारे का घनत्व तरलों के समान हो जाता है तब उसमें वे सब विकार उत्पन्न होते हैं जो तरलों में हो सकते हैं। जीन्स के गणित के अनुसार यदि तरल का गोल पिंड धीरे-धीरे नाचने लगे तो पिंड की आकृति गोलाभ हो जायगी, अर्थात् पिंड नारंगी की तरह कुछ चिपटा हो जायगा। नाचने का वेग जितना ही बढ़ेगा चिपटापन उतना ही बढ़ेगा, परन्तु जब छोटा अक्ष मध्यरेखा के व्यास का सप्त-द्वादशांश हो जायगा (अर्थात् उसका ७/१२ हो जायगा) तो पिंड उसके बाद अधिक चिपटा नहीं होगा। इसके बदले पिंड अंडाकार होने लगेगा। इसकी आकृति वह हो जायगी जिसे गणित में तीन असम अक्षों वाला दीर्घवृत्ताभ (एलिप्सॉयड) कहते हैं। वेग और बढ़ने पर पिंड की लंबाई बढ़ती जायगी, यहाँ तक कि लंबा अक्ष सब से छोटे अक्ष का तिगुना हो जायगा। इस अवस्था में पिंड में हलचल मचने लगती है। बीच से थोड़ा हट कर पिंड में कमर-सी बन जाती है, जिससे पिंड तुंबा-सा लगने लगता है। कभी एक सिरा बढ़ता है, कभी दूसरा, और इन सब आन्दोलनों का परिणाम यह होता है कि पिंड दो खंडों में टूट जाता है। विश्वास किया जाता है कि युग्मतारे इसी प्रकार उत्पन्न हुए हैं। जीन्स ने गणित से सिद्ध किया है कि गैसीय पिंड इस रीति से दो खंडों में नहीं विभक्त हो सकता, केवल तरल पिंड में ही ऐसा विकास हो सकता है।

जी० एच० डार्विन (Darwin) ने सिद्ध किया है कि विभक्त होने के बाद प्रत्येक पिंड में दूसरे के कारण ज्वार-भाटाएँ उत्पन्न होंगी, जिनके कारण ऊर्जा (एनर्जी) का ह्रास होगा और पिंडों के बीच की दूरी बढ़ेगी। विकिरण के कारण सापेक्षवाद के अनुसार पिंडों का द्रव्यमान भी घटता है और जीन्स ने सिद्ध किया है कि इस कारण से भी पिंड अधिक दूर होते जायँगे। फिर, जब-जब कोई दूसरा तारा किसी युग्मतारे के पास से होकर निकल जाता है, तब-तब युग्मतारे के सदस्यों की परस्पर दूरी कुछ बढ़ जाती है। इस प्रकार धीरे-धीरे उनके बीच में उतनी दूरी उत्पन्न हो जाती है जितनी बहुधा देखने में आती है।

ग्रहों की उत्पत्ति—नीहारिकाओं और तारों की उत्पत्ति पर तो हम विचार कर चुके, अब देखना चाहिए कि ग्रह कैसे उत्पन्न हुए होंगे। ग्रहों की उत्पत्ति न तो प्राथमिक नीहारिका से हुई होगी, न सूर्य के दो भागों में खंडित होने से। नीहारिका से ग्रहों की उत्पत्ति हुई होती तो ग्रह बहुत बड़े होते, वस्तुतः वे तारे होते। यदि वे सूर्य के खंडित होने से उत्पन्न हुए होते तो

वे सूर्य से बहुत छोटे न होते। युग्मतारो में बडा तारा छोटे के चौगुना तक ही देखने में आया है, परतु सूर्य तो बृहस्पति से १००० गुना अधिक भारी है, बुध से ८० लाख गुना भारी है। इस लिए ग्रहो की उत्पत्ति किसी दूसरी रीति से हुई होगी। इसके समर्थन में यह भी याद रखने योग्य है कि हमारा सूर्य अपनी धुरी पर बहुत कम वेग से नाचता है। ग्रहो में भी आवेग (मोमेंटम) कम है। इसलिए कोई लक्षण नही दिखाई पडता कि ग्रह पूर्वोक्त रीति से सूर्य के खडित होने पर बने है। जीन्स का विश्वास है कि किसी समय कोई अन्य तारा हमारे सूर्य के पास से होता हुआ निकल गया। उसी के आकर्षण से कुछ द्रव्य, जैसा नीचे विस्तार से समझाया जायगा, सूर्य से खुच गया। इसी द्रव्य से ग्रह बने।

ज्वार-भाटा सिद्धात—सूर्य कई अरब वर्षों से अतरिक्ष में चल रहा है। अन्य तारे भी चलते ही रहते है। इसलिए असभव नही जान पडता कि अत्यत प्राचीन काल में कभी कोई दूसरा तारा सूर्य के पास होता हुआ निकल गया हो। जिस प्रकार पृथ्वी के निकट होने के कारण चद्रमा पृथ्वी पर ज्वार-भाटा उत्पन्न करता है, उसी प्रकार इस बाहरी तारे ने सूर्य पर ज्वार-भाटा उत्पन्न किया होगा। उस समय हमारे सूर्य के पास पृथ्वी आदि ग्रह न रहे होगे। यदि तारा सूर्य की त्रिज्या (अर्धव्यास) की तिगुनी से अधिक दूरी पर से हो कर निकलता, तो ज्वार-भाटा से उठा पदार्थ फिर बैठ जाता, परतु वह सूर्य के अधिक निकट से होकर गया होगा। गणित बताता है कि ऐसी अवस्था में ज्वार-भाटा के कारण उठा पदार्थ छटक कर पृथक् हो गया होगा। जीन्स का कहना है कि इसी प्रकार छटके पदार्थ से ग्रह उत्पन्न हुए है। इसका समर्थन इस बात से होता है कि गणित के अनुसार छटका पदार्थ जब सिमटेगा तब लगभग उतने ही बडे पिंड बनेंगे जितने बडे ग्रह वस्तुत है। उपग्रहो की उत्पत्ति भी इसी प्रकार हुई होगी, क्योकि ग्रहो के बनते ही उन में सूर्य के कारण ज्वार-भाटा उठा होगा और कुछ पदार्थ छटका होगा। परतु उपग्रहो के भी उपग्रह इसलिए न बन पाये होगे कि उपग्रहो में द्रव्य कम है, वे शीघ्र ठढे हो गये होगे।

केवल इतना ही नही हुआ कि ग्रह और उपग्रह बने। अवश्य ही कुछ द्रव्य चूर्ण के रूप में बिखरा रह गया। यह सब द्रव्य धीरे धीरे किसी न किसी ग्रह में जा गिरा। इसका परिणाम गणितानुसार यह होता है कि दीर्घवृत्त में चलने वाले ग्रह प्राय वृत्ताकार मार्गों में चलने लगते है। वर्तमान ग्रह सभी लगभग वृत्तो में ही चलते है। पदार्थ आ गिरने के कारण ग्रहो के मार्ग कुछ अधिक बडे भी हो गये होंगे। समय पा कर प्राय सभी पदार्थ ग्रह में या सूर्य में जा गिरा होगा और अतरिक्ष स्वच्छ हो गया होगा। सूर्य के पास अब भी कुछ धूलि-सी है, जो सूर्य के प्रकाश से दीप्तिमान होने के कारण राशिचक्र-प्रकाश (ज़ोडाइऐकल लाइट) के रूप में हमें दिखाई पडती है। सभव है यह उसी पदार्थ का अवशेष हो जिससे ग्रह बने है।

इस पर भी विचार किया गया है कि हमारे सौर जगत् की आयु क्या होगी। जफरीज (Jeffreys) ने हिसाब लगाया है कि मोटे हिसाब से ग्रहों को वर्तमान परिस्थिति में आने में ७ अरब वर्ष लगा होगा। हम पहले देख चुके है कि पृथ्वी की आयु भूगर्भ विज्ञान के आधार पर लगभग २ अरब वर्ष है। इसलिए दोनो एक दूसरे का समर्थन करते है। परतु अन्य कई बातें

हैं जिन्हें यह ज्वारभाटा-सिद्धांत ठीक-ठीक नहीं समझा जाता। इसलिये कोई निश्चित होकर नहीं यह समझता कि ज्वारभाटा-सिद्धांत ठीक ही है; तो भी वर्तमान अवस्था में यही सिद्धांत सबसे अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

जीन्स का विश्वास है कि जैसे अन्य उपग्रहों का जन्म उनके ग्रहों के जन्म के प्रायः साथ ही हुआ उसी प्रकार चन्द्रमा का भी जन्म पृथ्वी के जन्म के प्रायः साथ ही हुआ होगा। परन्तु जीन्स से पहले जी० एच० डारविन ने यह सिद्धांत उपस्थित किया था कि आरम्भ में, जब पृथ्वी तरल थी, सूर्य के कारण पृथ्वी पर ज्वार-भाटा उत्पन्न होता रहा होगा। ऐसे ज्वार-भाटा का चक्रकाल सूर्य से पृथ्वी की दूरी पर निर्भर है। ऊपर हम देख चुके हैं कि आरम्भ में पृथ्वी तथा सब अन्य ग्रहों की दूरी सूर्य से बढ़ती जा रही थी। इसलिए संभव है कि किसी जमाने में पृथ्वी के ज्वार-भाटा का चक्रकाल ठीक उस काल के बराबर हो गया हो जितने में उस समय पृथ्वी सूर्य के चारों ओर एक बार प्रदक्षिणा करती थी। उस समय अनुनाद (रेज़ोनेंस) के सिद्धांतानुसार ज्वार-भाटा की ऊँचाई इतनी बढ़ गई होगी कि काफी पदार्थ छटक कर अलग हो गया होगा। यही पदार्थ पीछे सिमट कर चद्रमा हो गया होगा। जेफरीज़ ने इस प्रश्न की जाँच सविस्तार की है और यह परिणाम निकाला है कि ऐसा होना बहुत संभव है। अधिक वेग से नाचने के कारण यदि आदि काल में ही पृथ्वी खंडित होती तो चद्रमा का द्रव्यमान पृथ्वी के द्रव्यमान से बहुत कम न होता। परन्तु चद्रमा का द्रव्यमान पृथ्वी के अस्सीवें भाग (१/८०) से कुछ कम है। इसलिए पृथ्वी के अधिक वेग से नाचने के कारण चद्रमा न उत्पन्न हुआ होगा। यद्यपि डारविन और जेफरीज़ का सिद्धांत गणित के अनुसार ठीक है तो भी अधिक संभव है कि ग्रहों की उत्पत्ति के समय ही बाहरी तारे, सूर्य और छटके पदार्थ की नोच-खसोट में पृथ्वी से चद्रमा के बराबर माल अलग हो गया हो और उसी समय चद्रमा का जन्म हुआ हो।

अन्य सौर-जगतों की संभावना—इसकी भी गणना की गई है कि हमारे सूर्य और किसी तारे, या किन्हीं भी दो तारा, के इतने पास आ जाने की क्या संभावना है कि ग्रहादि उत्पन्न हो सकें। कितने स्थान में कितने तारे हैं और वे किस वेग से चलते हैं यह ज्ञात ही है। इसलिये दो तारों की मुठभेड़ की संभावना गणना द्वारा ज्ञात की जा सकती है। यद्यपि सूर्य तथा तारा के उत्पन्न हुए कई अरब वर्ष हो गये हैं तो भी तारे एक-दूसरे से इतनी दूर-दूर पर हैं कि मुठभेड़ की संभावना बहुत कम है और इसलिए बहुत कम तारा के पास ग्रह होंगे। पहले लोगों की धारणा थी कि प्रत्येक तारे के आस-पास ग्रह होंगे, परन्तु पूर्वोक्त गणना के अनुसार जान पड़ता है कि प्रति दस लाख तारा में केवल एक के पास ग्रह और उपग्रह होंगे।

भविष्य—यदि सौर-जगत् की उत्पत्ति हमारे सूर्य और किसी तारे के मुठभेड़ से हुई तो क्या यह संभव नहीं है कि भविष्य में सौर-जगत् का अंत भी किसी ऐसी ही मुठभेड़ से हो? ऐसा होना यद्यपि असंभव नहीं है, तो भी इस की संभावना बहुत कम है। वस्तुतः कुल संभावना इतनी ही है कि औसतन २×१०^{१७}, अर्थात् २,००,००,००,००,००,००,००,००० वर्षों में एक

मुठभेड होगी। इसके लिए क्या हाय-हाय किया जाय? इससे कही अधिक सभव है कि हमारा सूर्य धीरे-धीरे अधिक तप्त हो जायगा और इसलिए पृथ्वी पर जीवन का अत हो जायगा।

तारा-पुजो के भविष्य में क्या है? क्या वे सदा पुज के रूप में ही बने रहेंगे? इस प्रश्न का उत्तर भी गणित से मिला है। तारो में वेग है। इसलिए प्रत्येक दो तारो की दूरी सदा एक-सी नही बनी रहती है। तारो के बीच गुरुत्वाकर्पण रहता है। दूरी के अनुसार गुरुत्वाकर्पण कम या अधिक रहता है, परतु प्रभाव सदा यही पडता है कि शीघ्रगामी तारे का वेग कुछ घट जाता है, मद गति से चलने वाले तारे का वेग कुछ अधिक हो जाता है। तारापुजो के तारो पर बाहरी तारो का भी ऐसा प्रभाव पडेगा कि धीरे-धीरे पुज बिखर जायगा। रोहिणी तारापुज हमारे पास है। इस पुज का सब से घना भाग हम से कुल १३० प्रकाश वर्ष पर है। इस पुज के प्रत्यक सदस्य को हम जानते है। प्राय सभी सदस्य एक दूसरे के समानातर और लगभग एक ही वेग से जा रहे है। आगामी अरब वर्षों में इस पुज की गति क्या होगी हम गणित द्वारा बता सकते है। धीरे-धीरे इस के सदस्य बिखर जायेंगे और अरब वर्षों में वे उतनी-ही-उतनी दूरी पर छिटक जायेंगें जितनी-जितनी पर सूर्य के आस-पास तारे छिटके हुए है। तारापुज का शीघ्र बिखरना सुगम नही है। जो सदस्य बाहरी तारे के आकर्षण से कुछ अधिक विचलित हो जाता है उसे पुज के अन्य सदस्य अपनी ओर खीच लाने की चेप्टा करते है। बात कुछ वैसी ही है जैसे ज्वार-भाटा के उठने में है। बाहरी पिंड के आकर्षण से ज्वार-भाटा उत्पन्न होता है, परतु बाहरी पिंड के हट जाने पर ज्वार-भाटा बैठ जाता है, इसी प्रकार किसी बाहरी तारे के समीप आ जाने पर पुज के तारे उससे कुछ विचलित हो जाते है, परतु बाहरी तारे के दूर चले जाने पर वे फिर प्राय पुरानी जगह आ जाते है, तो भी कुछ प्रभाव स्थायी रूप से सदा के लिए पड ही जाता है। पुज थोडा बिखर जाता है। कुछ तारापुजा में इतना कम द्रव्य है कि वे शीघ्र तितर बितर हो जायँगे, परतु रोहणी-तारापुज स्थाई समतुलन में (स्टेबुल) है। यह शीघ्र न बिखरेगा। अनुमान किया गया है कि इसके इतना बिखरने में कि यह पहचान न पडे ५ खरब वर्ष लगेंगे। कृत्तिका तारापुज रोहिणी-तारापुज से अधिक घना है। इसके विलीन होने में अधिक समय लगेगा, समवत २० अरब वर्ष लगेंगे। गोलाकार तारापुज सभवत कभी न विलीन होगे।

यह भी प्रश्न उठता है कि क्या नये तारापुज बन सकते है। गणित का उत्तर यही है कि यह प्राय असभव है। बाहरी तारे आते जायँ और एक दूसरे के आकर्पण में उलझ कर तारापुजो का निर्माण करें यह अनहोनी-सी बात जान पडती है। इसलिए समय पाकर तारापुजो का विनाश ही होगा। उनके स्थान पर नवीन तारापुज न आ सकेंगे।

अब यह प्रश्न उठता है कि जब विश्व की सृष्टि हुई तो क्या आज से बहुत अधिक तारापुज थे। इसका उत्तर इस पर निर्भर है कि विश्व की सृष्टि कब हुई। हम इस प्रश्न को उलट कर पूछें तो अधिक लाभदायक उत्तर मिलता है। प्रश्न यह होगा कि वर्तमान तारापुजो को देखते हुए क्या यह नही बताया जा सकता कि विश्व अधिक-से-अधिक कितना पुराना होगा? यदि

विश्व बहुत ही पुराना होता तो सभी तारापुंज अब तक विलीन हो गये होते । अब भी तारापुंज हैं, यह इस बात का प्रमाण है कि हमारा विश्व अनंतकाल से ही नहीं चला आया है । वस्तुतः गणना से पता चलता है कि हमारा विश्व १० अरब वर्षों से अधिक प्राचीन नहीं है । इसकी तुलना भूगर्भ-विज्ञान से प्राप्त आयु से करने पर हम देखते हैं कि प्रायः सभी दृष्टि-कोणों से विश्व की आयु कुछ अरब वर्ष जान पड़ती है ।

सारांश

इस पुस्तक को समाप्त करने के पहले हम नीहारिका-संबंधी ज्ञान का सारांश दे देना चाहते हैं ।

सूर्य के चारों ओर ग्रह प्रदक्षिणा करते हैं । इन ग्रहों में से एक ग्रह पृथ्वी है । पृथ्वी सूर्य से सवा नौ करोड़ मील दूर है । गणित भी क्या आश्चर्यजनक विद्या है कि बड़ी-से-बड़ी संख्याओं को थोड़े में प्रकट कर देती है । लखपती या करोड़पती शब्द से परिचित होने के कारण, या भारत सरकार के बजट में कई अरब रुपयों की चर्चा सुनते-सुनते, अथवा पिछले अध्यायों में कई अरब वर्षों या कई खरब मीलों के उल्लेख से, संभव है पाठक सवा नौ करोड़ मील को कुछ विशेष अधिक न समझें । परंतु है यह संख्या बहुत बड़ी । यदि हम रेलगाड़ी से सूर्य तक जाना चाहें और यह गाड़ी बिना रुके हुए बराबर डाक गाड़ी की तरह ६० मील प्रति घंटे के हिसाब से चलती जाय तो हमें वहाँ तक पहुँचने में (यदि हम मार्ग में भस्म न हो जायें, या बुढ़ापे के कारण हमारी मृत्यु न हो जाय) १७५ वर्ष से कम न लगेगा। रेलभाड़े के वर्तमान दर से तीसरे दर्जे से आने-जाने का खर्च अट्ठावन लाख रुपया हो जायगा । इस यात्रा के लिए यदि स्टेशन-मास्टर नोट लेना न स्वीकार करे और सोना १०० रुपया प्रति तोला हो तो हमको लगभग १८ मन सोना किराया में देना पड़ेगा !*

परंतु सूर्य की यह आश्चर्यजनक दूरी तारों की दूरी के सामने तुच्छ है। यदि हम सूर्य की दूरी को नक्शे में एक इंच से निरूपित करें तो निकटतम तारा उस नक्शे में पाँच मील पर पड़ेगा । इससे स्पष्ट है कि तारे बहुत दूर-दूर पर स्थित हैं। हमारा सूर्य भी एक तारा है और ग्रह सब इसी के परिवार में हैं । सूर्य का निकटतम पड़ोसी तारा इतनी दूर पर है कि वहाँ से अच्छे दूरदर्शक से भी हमारी पृथ्वी दिखाई न पड़ेगी । पाँच मील की दूरी से एक इंच की दूरी जितनी नगण्य है, वैसे ही निकटतम तारे से पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी नगण्य है । इस पैमाने पर पृथ्वी तो इंच के दस हजारवें भाग से भी छोटी पड़ेगी ! पृथ्वी को निकटतम तारे से परदा करने की कोई आवश्यकता ही नहीं ; बिना परदे के ही वह अदृश्य रहेगी !

सूर्य और जितने भी तारे हमें दिखाई पड़ते हैं सब एक विशेष समूह में हैं, जिसे हम मंदाकिनी-संस्था कहते हैं । जब निकटतम तारा हम से इतनी दूरी पर है, जितनी ऊपर बतायी गयी

---

*लेखक कृत 'सौर परिवार' से।

है और हम जानते है कि हमरी मदाकिनी-सस्या में नही कुछ तो एक खरब तारे होगे, जो एक दूसरे से इसी प्रकार दूर-दूर पर बसे हुए है, तब मदाकिनी-सस्था कितनी बडी होगी ? अवश्य ही यह हमारी कल्पना शक्ति के परे है । एक खरब तारा की कल्पना ही विकट है । "प्रथम बार तो ऐसा जान पडता है कि कोरी आँख से दिखाई पडने वाले तारे ही असख्य होगे । परतु गिन कर देखा गया है कि कोरी आँख से एक समय में ३,००० से अधिक तारे कभी दिखाई नही पडते । सपूर्ण आकाश में कुल ६,००० तो तारे है ही, और हमें एक बार में आधे से अधिक आकाश दिखाई नही पडता । गिनने को कौन कहे, इन ६,००० तारो के नाम या नबर पडे है और उन की सूची छपी है । अब अपनी मदाकिनी-सस्था के तारो की कल्पना करने के लिए यदि हम सोचें कि आकाश में दिखाई पडने वाले ३,००० तारो में से प्रत्येक फूट कर अपने ही बराबर ३,००० तारो में प्रस्फुटित हो जाता है तो भी हमें कुल ९० लाख तारे मिलेंगे । मदाकिनी-सस्या के १ खरब तारो की सख्या के आगे यह कुछ नही है ।"*

यदि हम अपनी मदाकिनी-सस्या की प्रतिमा "पैमानें के अनुसार बनाना चाहें और हमारी समूची प्रतिमा कुम्हार के चाक के बराबर हो तो इस प्रतिमा में हमारी पृथ्वी सूक्ष्मतम कण से भी छोटी होगी ! ! वस्तुत वह इतनी छोटी होगी कि किसी भी सूक्ष्मदर्शक यत्र से हम को वह न दिखाई पडेगी ! ! !" सूर्य भी कठिनाई से मिल पायेगा ।

हमारी मदाकिनी-सस्या का रूप बहुत कुछ कुम्हार के उस चाक की तरह है, जिसके बीच में ऊपर और नीचे मिट्टी के अर्धगोल चिपका दिये गये हो ।

हमारी मदाकिनी-सस्या में केवल तारे ही नही हैं । उस में बादल की तरह सफेद नीहारिकाएँ, काली नीहारिकाएँ तारापुज और गोलाकार तारापुज भी है । सर्वत्र थोडी धूलि भी फैली है । जहाँ यह धूलि अधिक हो गई है, वहाँ वह काली नीहारिका-सी जान पडती है । जहाँ किसी अति तप्त तारे के पराकासनी प्रकाश से धूलि चमक उठती है वही वह श्वेत बादल के समान प्रसृत नीहारिका-सी जान पडती है । साधारण तारापुज वे तारापुज है जहाँ दो-चार सौ या कम तारे, सयोग से या उत्पत्ति के समय के किसी विशेष कारण से, एकत्र हो गये है । गोलाकार तारा-पुजो में कई हजार तारे एक साथ रहते है और वे देखने में अत्यत सुन्दर लगते है । उनका क्या भौतिक अर्थ है कोई कह नही सकता, परतु वे हमारी मदाकिनी-सस्या से सबधित है । वे उसी को घेरे हुए है और अपक्षाकृत उसी के पास है ।

जिस प्रकार हमारी मदाकिनी-सस्या है, उसी प्रकार प्राय असख्य अन्य सस्थाएँ है । इन्हें अगाग नीहारिका, द्वीपविश्व या ब्रह्माड कहते है । उनकी सरचना बहुत-कुछ वैसी ही है जैसी हमारी मदाकिनी-सस्या की । अधिकाश ऐसी नीहारिकाएँ नाप में प्राय उतनी ही बडी है जितनी हमारी मदाकिनी सस्या । प्रत्यक में कई अरब या खरब तारे होगे । अधिकाश

---

* 'सरल विज्ञान-सागर' में लेखक के एक लेख से ।

का रूप कुम्हार के चाक की तरह परन्तु बीच में फूला हुआ होगा। बीच वाले गोलाभ भाग को चारों ओर से घेरने वाले भाग में पदार्थ चाक की तरह अटूट नहीं, कुछ-कुछ साँप की कुंडली की तरह सर्पिलाकार है। एक चौथाई नीहारिकाएँ नारंगी की तरह चिपटी हैं और विश्वास किया जाता है कि सुदूर भविष्य में उनमें भी सर्पिलाकार भुजाएँ निकल आयेंगी।

अपेक्षाकृत निकट अगाग नीहारिकाओं का रूप उनके फोटोग्राफों से स्पष्ट हो जाता है। इस पुस्तक में दिये गये चित्रों से उनका रूप पाठकों को भी स्पष्ट हो गया होगा, परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि नीहारिकाओं के धरातलों से हम कभी कम, कभी अधिक, बाहर हो सकते हैं और कभी-कभी ठीक उसी धरातल में ही रह सकते हैं। इसलिए ठीक एक ही रूप की दो नीहारिकाएँ हमें कम या अधिक चिपटी दिखाई दे सकती हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे रकाबी का सच्चा चित्र बनाने में चित्रकार अपने दृष्टिकोण के अनुसार उसे कम या अधिक दीर्घवृत्ताकार बना सकता है।

ये अगाग नीहारिकाएँ एक-दूसरे से दूर-दूर पर बसी हैं। हम देख चुके हैं कि यदि हम एक को दिल्ली शहर से निरूपित करें तो दूसरी कहीं मेरठ के पास जा कर पड़ेगी। इस प्रकार नीहारिकाएँ, यद्यपि वे स्वयं ही बहुत बड़ी हैं, अपेक्षाकृत बहुत दूरियों पर स्थित हैं।

जहाँ तक वर्तमान दूरदर्शकों से पता चला है नीहारिकाओं का कोई अंत नहीं है। अंतरिक्ष में वे प्रायः सम रूप से बसी हैं, अर्थात् उनका घनत्व सब जगह प्रायः बराबर है। कुछ नीहारिका-पुंज अवश्य हैं, परन्तु वे इतने सघन नहीं हैं कि तारापुंजों के समान सघन लगें। क्या अगाग नीहारिकाएँ भी स्वयं समूहों में रहती हैं? इस प्रश्न का उत्तर हम अभी नहीं दे सकते, हमारे वर्तमान दूरदर्शक इतने शक्तिशाली नहीं हैं कि वे कई खरब नीहारिकाएँ दिखा सकें, और यदि नीहारिकाएँ समूहों में विभक्त होंगी भी, तो एक-एक समूह में एक-दो खरब नीहारिकाओं से कम क्या होंगी!

नीहारिकाओं का आरंभ कैसे हुआ? उनका भविष्य क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर ठीक-ठीक देना असंभव है। सिद्धांत हम बना सकते हैं, उन सिद्धांतों से हम कई बातें समझा सकते हैं, परन्तु सब नहीं। कहीं-न-कहीं कठिनाई रह जाती है। नूतनतम सिद्धांत जीन्स का है। उस के अनुसार आरंभ में सब पदार्थ प्रायः समरूप से सर्वत्र बिखरा हुआ था। उस में तरंगें उठीं और पदार्थ कहीं-कहीं घनीभूत होने लगा। सघन पदार्थ ने पास-पड़ोस के द्रव्य को आकर्षित कर लिया। इस प्रकार बड़े-बड़े पिंड बन गये। आकर्षण के कारण वे संकुचित हुए और इसलिए वे गरम हो गये, ठीक उसी प्रकार जैसे बाइसिकिल के पंप से पंप के मुँह को बंद करके हवा को बलपूर्वक संकुचित करने से पंप गरम हो जाता है। जब वे इतने गरम हो उठे कि उन में विशेष ऐटम नष्ट-भ्रष्ट हो सकें तो वहाँ यह क्रिया आरंभ हो गई। इस प्रकार वहाँ और भी ताप उसी प्रकार उत्पन्न हुआ जैसे ऐटम-बम में उत्पन्न होता है। कभी ऐटमों के टूटने से, कभी संकुचन से, तारे तप्त होते रहे और इस प्रकार आकाश में दिखाई पड़ने वाले सभी तारे उत्पन्न हुए। इसी प्रकार अगाग नीहारिकाएँ भी उत्पन्न हुईं, जो वस्तुतः बहुत से तारों के समुदाय-मात्र हैं। तारे

संकुचित और गरम होते-होते ऐसी अवस्था में कभी आ जायेंगे कि और अधिक संकुचित होना उनके लिए असंभव होगा। तब वे धीरे-धीरे ठंडे होने लगेंगे। आकाश में ऐसे तारे देखे भी गये हैं जो अत्यंत संकुचित अवस्था में हैं और संभवतः ठंडे हो रहे हैं। हमारा सूर्य भी इसी प्रकार का तारा है। अभी वह महत्तम घनता तक नहीं पहुँच सका है। संभवतः वह और भी तप्त होगा; तब वह ठंडा होने लगेगा। संभव है सूर्य के अधिक तप्त होने के कारण पृथ्वी पर जीव-जंतु जल-भुन कर भस्म हो जायें।

सूर्य के बाल्यकाल में ही किसी तारे से उसकी मुठभेड़ हुई होगी। यह नहीं कि वह तारा सूर्य से भिड़ ही गया होगा। वह तारा सूर्य के बहुत पास से, संभवतः सूर्य के व्यास की दुगुनी-तिगुनी दूरी पर से होता हुआ, निकल गया होगा। उससे सूर्य में ऐसी उथल-पुथल मची होगी कि कुछ द्रव्य छटक कर अलग हो गया होगा, या यों कहिये कि तारा अपने आकर्षण द्वारा हमारे सूर्य से कुछ द्रव्य नोचता हुआ निकल गया होगा, परंतु इस प्रकार नुचे हुए माल को वह स्वयं पा न सका होगा; यह द्रव्य सूर्य के पास ही रह गया होगा। निकलने के तिरछे वेग के कारण यह द्रव्य सूर्य की चारों ओर नाचने लगा होगा, और इसलिए सूर्य के आकर्षण से वह द्रव्य सूर्य में न गिर सका होगा। वह द्रव्य मछली के आकार का लंबे रूप में रहा होगा, जो पीछे खंडित हो गया होगा। बीच के मोटे खंड से सब से बड़ा ग्रह बृहस्पति बन गया होगा। किनारे-किनारे छोटे ग्रह बने होंगे; बृहस्पति की एक ओर मंगल, पृथ्वी, शुक्र और बुध हैं, दूसरी ओर शनि, यूरेनस, नेपच्यून और प्लूटो। सूर्य के ही आकर्षण के कारण पृथ्वी की अर्द्ध पिघली दशा में एक भाग नुच कर चंद्रमा बना होगा। इस प्रकार भारत के प्राचीन ऋषियों की यह धारणा कि चन्द्रमा पृथ्वी से ही निकल कर आकाश में पहुँचा है आज वैज्ञानिक सत्य-सी जान पड़ती है।

अनुक्रमणिका

[माउंट विलसन वेधशाला

माउंट विलसन की वेधशाला

यहाँ संसार का सब से बड़ा तालयुक्त दूरदर्शक है। यह एक सज्जन के दान से बना है।

[लिक वेधशाल

लिक वेधशाला का बडा दूरदर्शक ।

इसका व्यास ३६ इच है । जब यह बना था तब यह ससार का सब से बडा दूरदर्शक था ।
यह श्री जम्स लिक के दान से बना था ।

[हारवार्ड वेधशाला

अरेक्विपा की वेधशाला ।
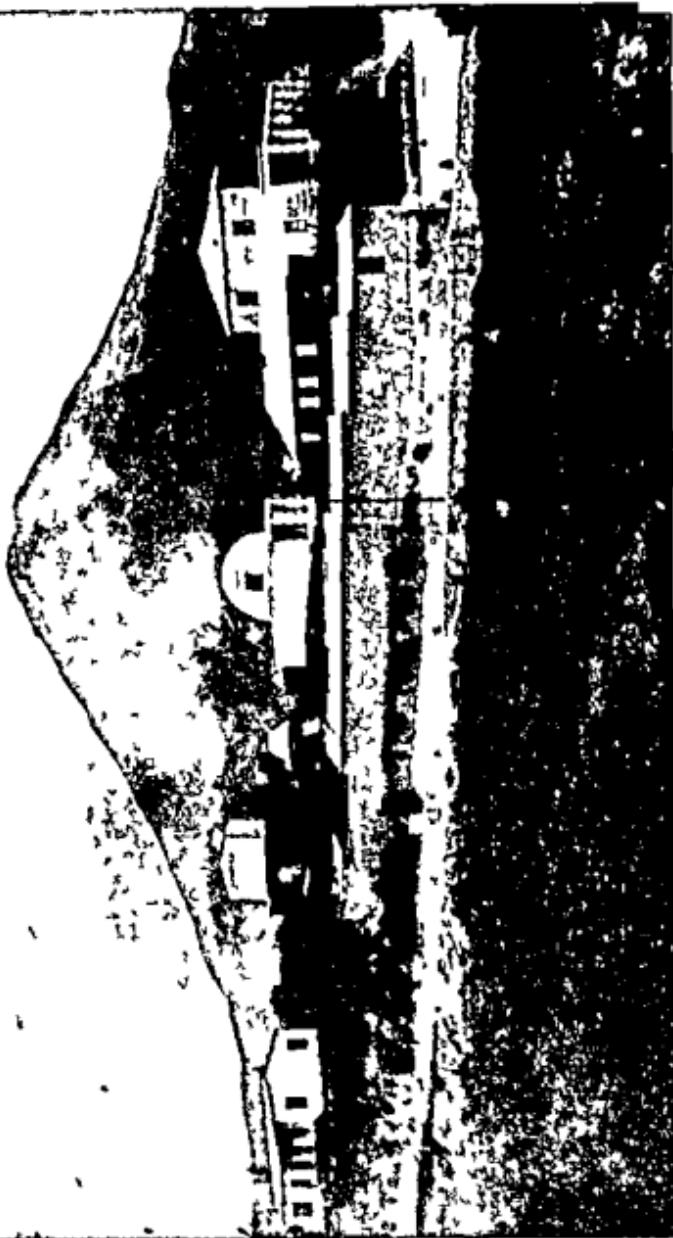
यहाँ से नीहारिकाओं के अनेक फोटोग्राफ लिये गये थे ।
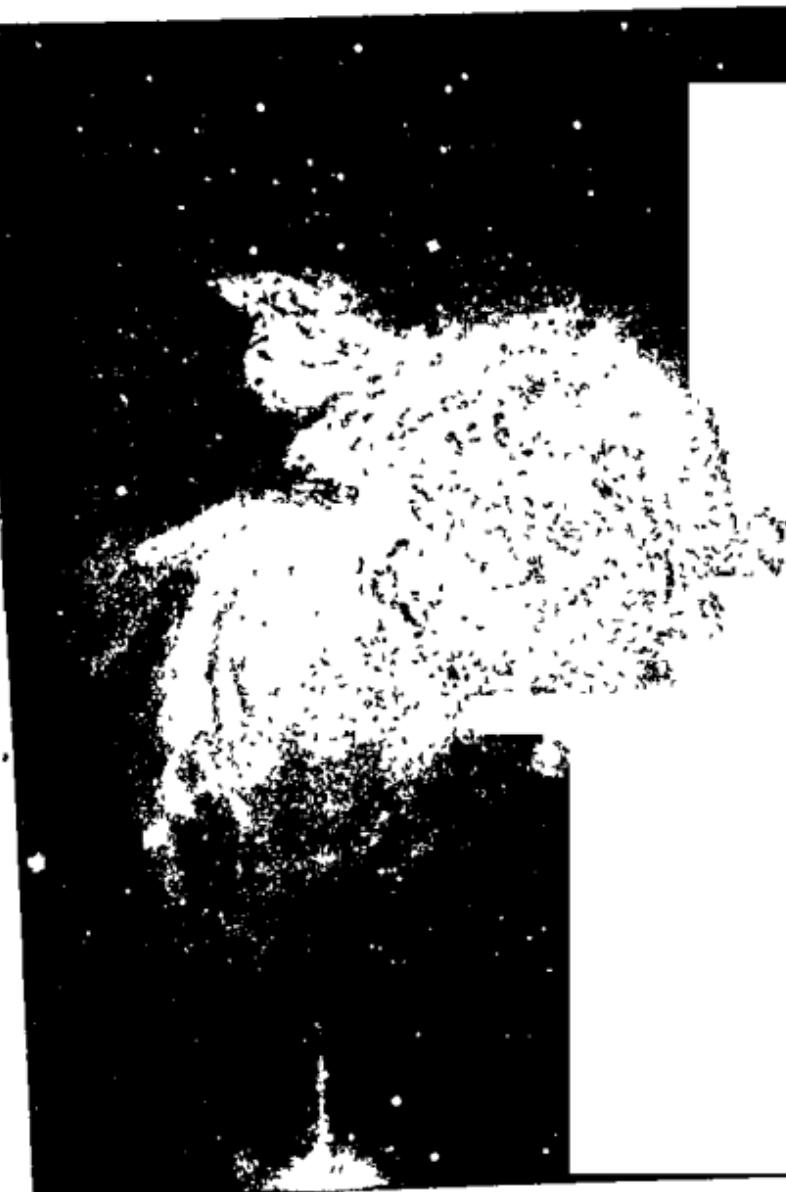
मृग तारामंडल की वृहत् नीहारिका (एन० जी० सी० १९७६, मेसियर ४२)

यह प्रसृत नीहारिका है। अनुमान किया जाता है कि यह निजी चमक से नहीं, पास-पड़ोस के तारों के कारण चमकती है। [१०० इंच वाले दूरदर्शक से।]

वृष तारामंडल में 'कर्कट' नीहारिका (एन० जी० सी० १९५२; मेसिय १)
यह प्रसृत नीहारिका है। (लाल प्रकाश में २०० इंच वाले दूरदर्शक से लिया गया फोटो।)
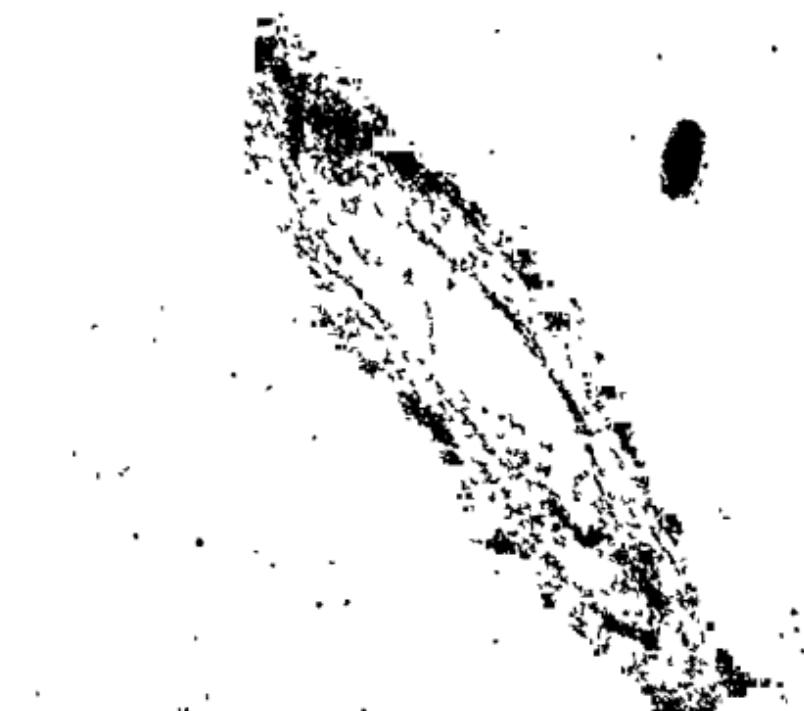
देवयानी तारामंडल की वृहत् नीहारिका (एन० जी० सी० २२४, मेसिये ३१)

इस नीहारिका में भुजाएँ दिखायी पड रही हैं, परन्तु वे बहुत स्पष्ट नहीं हैं क्योंकि इसकी धरातल से हमारी दृष्टि रेखा छोटा ही कोण बनाती है। अन्य सर्पिल नीहारिकाओं की तरह यह भी कुम्हार की चाक की तरह होगी। [माउंट पालोमर के ४८ इंच वाले श्मिट दूरदर्शक से।]

त्रिकोण तारामंडल की सर्पिल नीहारिका (एन० जी० सी० ५९८ मेसिये ३२)

देखें इसकी भुजाएं स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। लाल प्रकाश में फोटो; माउंट पैलोमर के ४८ इंच वाले श्मिट दूरदर्शक से।

मृगयाशुन तारामंडल की सर्पिल नीहारिका (एन० जी० सी० ४२४४)

हम इसे इसकी कोर की दिशा से देखते हैं क्योंकि हम इसके धरातल में हैं। इसी लिये यह नीहारिका हमें लंबी रेखा-सी दिखायी पड रही है। परंतु अनुमान किया जाता है कि अन्य सर्पिल नीहारिकाओं की तरह इसमें भी भुजाएँ होंगी [२०० इंच वाले दूरदर्शक से]।

केश तारामंडल की सर्पिल नीहारिका (एन० जी० सी० ४५६५)

अनुमान किया जाता है कि अन्य सर्पिल नीहारिकाओं की तरह यह नीहारिका भी कुम्हार की चाक की तरह होगी। हम इसके धरातल में है, इसी से यह हमें लबी रेखा-सी दिखायी पडती है। [२०० इंच वाले दूरदर्शक से।]

कन्या तारामंडल की एक सर्पिल नीहारिका (एन० जी० सी० ४५९४)

अन्य सर्पिल नीहारिकाओं की तरह यह नीहारिका भी कुम्हार की चाक की तरह होगी। इसे हम प्रायः इसकी कोर की दिशा से देख रहे हैं; इसीलिये इसकी भुजाएँ हमें नहीं दिखायी पड़ती। बीच का गोलाकार भाग अन्य नीहारिकाओं की अपेक्षा इसमें अधिक विस्तृत है। [२०० इंच वाले दूरदर्शक से।]

सप्तर्षि तारामडल की सर्पिल नीहारिका (एन० जी० सी० २८४१)

सभवत यह नीहारिका भी वृत्ताकार (कुम्हार की चाक की तरह गोल) होगी। तिरछी दिखायी पडने के कारण ही यह अडाकार जान पडती है। [२०० इच वाले दूरदर्शक से।]

मृगयाशुन तारामडल की दूसरी सर्पिल नीहारिका
(एन० जी० सी० ५१९४; मेसिये ५१)

इसकी भुजाएँ बहुत ही स्पष्ट दिखायी पडती है। [२०० इच वाले दूरदर्शक से।]

जिराफ तारामडल की सर्पिल नीहारिका (एन० जी० सी० २४०३)
इसकी भुजाएँ स्पष्ट दिखायी पडती ह क्योंकि इसका धरातल हमारी दृष्टि रेखा पर लब हैं। [२०० इंच वाले दूरदर्शक से।]

खगाश्व तारामंडल की दंडमय सर्पिल नीहारिका (एन० जी० सी० ७७४१)
देखें कि बीच में एक दंड-सी श्वेत रेखा है जो सम्मुख भुजाओं को मिलाती है । इसी से इसे दंडमय नीहारिका कहते हैं । [२०० इंच वाले दूरदर्शक से ।]

कन्या तारामंडल की एक अन्य सर्पिल नीहारिका (एन० जी० सी० ५२४७)

देखें कि इसकी भुजाएँ स्पष्ट दिखायी पड रही हैं। [लिक वेषशाला; ३६ इंच वाले दर्पणयुक्त दूरदर्शक से।]

महाश्व तारामंडल की सर्पिल नीहारिका (एन० जी० सी० ७४७९)

देखें कि इसकी भुजाएं पूर्णतया स्पष्ट दिखायी पड रही हैं। [माउंट विलसन के ६० इंच वाले दूरदर्शक से।]

सिंह तारामंडल की चार नीहारिकाएँ

एन० जी० सी० ३१८५ (जाति—एस-बी-सी), एन० जी० सी० ३१८७ (जाति—एस-बी-सी), एन० जी० सी० ३१९० (जाति—एस-बी), एन० जी० सी० ३१९० (जाति—ई २)। [२०० इंच वाले दूरदर्शक से।]

उत्तर किरीट तारामंडल में नीहारिका-गुच्छ।
दूरी लगभग १२ करोड़ प्रकाश-वर्ष। [२०० इंच वाले दूरदर्शक से।]

वयानी नीहारिका का दक्षिणी भाग

देखें कि छोटे पैमाने पर लिये गये फोटोग्राफों में जो भाग केवल बादल से जान पड़ते हैं वे वस्तुत अगण्य तारों के समूह हैं, जैसा इस चित्र से स्पष्ट है। [१०० इञ्च वाले दूरदर्शक से, छायाकार हबल।]
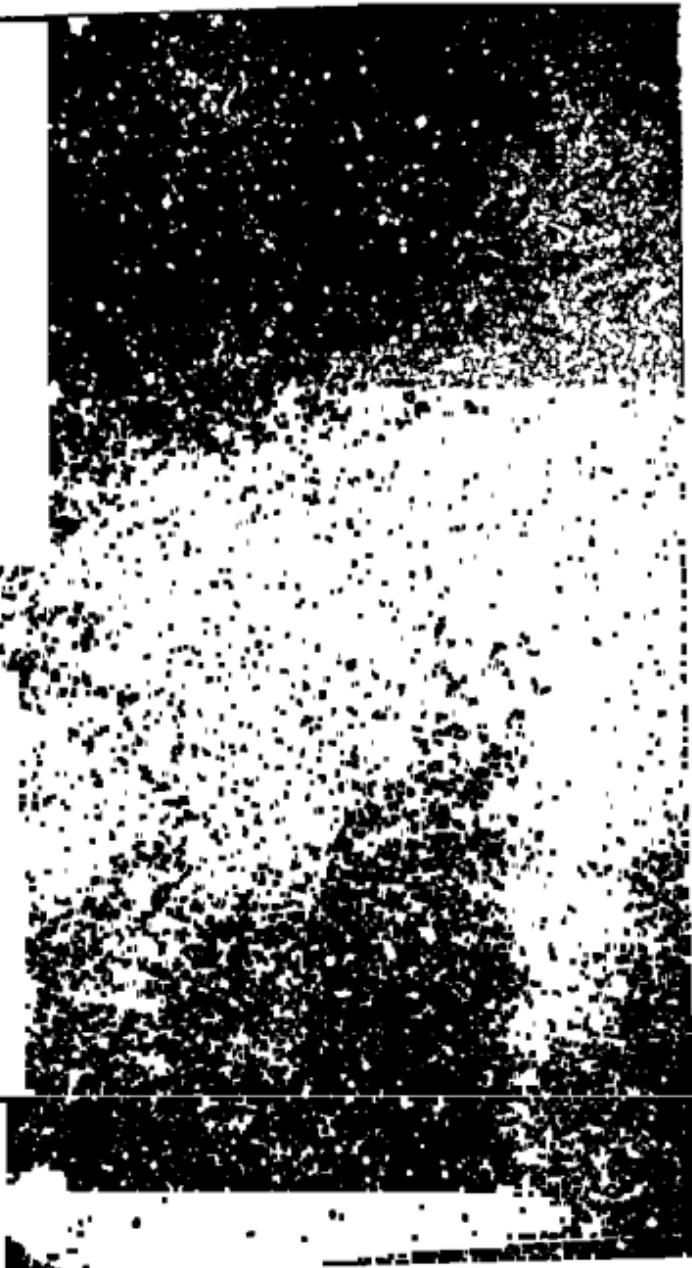
देवयानी तारामंडल की छोटी नीहारिका (एन० जी० सी० १४७)

देखें कि नीहारिका असंख्य तारों से बनी है। लाल प्रकाश से फोटो
[२०० इंच वाले दूरदर्शक से।]

वीणा तारामंडल की ग्रहीय नीहारिका

विश्वास किया जाता है कि केंद्रीय तारे से निकले पदार्थ से यह नीहारिका बनी है और केंद्रीय तारे के पराकासनी रश्मियों से क्षुब्ध होकर यह चमकती है। [छायाकार रिची।]